छठवां अध्याय

संजीव के कथा-साहित्य में आंचलिकता बोध

विषय प्रवेश

आंचलिकता की प्रवृत्ति हिंदी उपन्यास साहित्य के लिए नयी प्रवृत्ति नहीं है। इसका बीज भारतेंदु युग में ही पड़ गया था। जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी द्वारा रचित उपन्यास **'वसंत मालती'** (1819) हिंदी का वह प्रथम उपन्यास है, जिसमें आंचलिकता की पुट मिलती है। भुवनेश्वर मिश्र कृत **'घराऊ घटना'** (1894) भी ग्राम जीवन पर आधारित उपन्यास है। परंतु आंचलिक उपन्यास की परंपरा का आरंभ फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास 'मैला आँचल' (1954) से माना जाता है जबकि इसके पहले मन्नत द्विवेदी कृत **'रामलाल'** (1914), शिवपूजन सहाय कृत **'देहाती दुनिया'** (1926), नागार्जुन कृत **'बलचनमा', 'नयी पौध'**, रांगेय राघव कृत **'काका'** आदि आंचलिक उपन्यास है, परंतु हिंदी साहित्य में उस समय तक इस धारा का नामकरण नहीं किया गया था। आंचलिक साहित्य को मूलतः ग्रामीण साहित्य कहकर संबोधित किया जाता है, परंतु यह भी सत्य है कि प्रेमचंद के उपन्यास ग्रामीण जीवन पर आधारित होने के बावजूद आंचलिक नहीं हैं। आंचलिक उपन्यासों में विशिष्ट अंचल, विशिष्ट लोग, विशिष्ट संस्कृति, विशिष्ट भाषा, बोली आदि की प्रमुखता होती है। अर्थात आंचलिक उपन्यासों में नायक अंचल होता है, संघर्षरत मनुष्य नहीं। यहाँ लोक-संस्कृति, लोक-विश्वास, रीति-रिवाज, स्वभाव आदि के व्यौरे प्रस्तुत किये जाते हैं। यहाँ लोक-संस्कृति महत्वपूर्ण होती है, उसे प्रस्तुत करनेवाला आदमी नहीं। अंचल शब्द से एक वैशिष्ट्यपूर्ण भू-भाग या भू-प्रदेश का बोध होता है जो अपनी स्थानीय भौगोलिक या प्राकृतिक विशेषताओं के कारण अन्य प्रदेशों से भिन्न दिखता है। कई प्रदेशों के अपने पहाड़ों, नदियों, जलवायु, भूमि, उत्सव, पर्व यानी की उनका संपूर्ण जीवन एक इकाई बन जाती है। इसी अपरिचित अंचल के जन-जीवन के चित्रण को आंचलिकता कहते हैं। नंददुलारे वाजपेयी के अनुसार अपरिचित भूमि और अज्ञात जातियों के वैविध्यपूर्ण चित्रण आंचलिक उपन्यास की प्रमुख विशेषता है। सामान्य लोगों के सुख-दुख का वर्णन करते हुए आंचलिक उपन्यास आज हिंदी उपन्यास सहित पूरे विश्व-साहित्य को प्रभावित कर रहा है। इस विधा ने पिछड़े और अछूते अंचलों को वाणी दी है।

आंचलिकता का स्वरूप

आंचलिकता की नवीन शैली ने आधुनिक साहित्य के अनेक विधाओं को प्रभावित किया है। समाज में घटित यथार्थ घटनाएँ इसमें वर्णित होती हैं। 'अंचल' उस विशिष्ट क्षेत्र को कहते हैं जो संपूर्णता में एक ही देश का अंग होते हुए भी अपनी कुछ खास विशेषताओं के कारण अपना एक अलग और विशिष्ट महत्व रखता है। यह विशिष्ट कोई भू-भाग या उस पर रहने वाला समाज भी हो सकता है। उस क्षेत्र में रहने वाले लोगों की लोक-कथाएँ, लोक-परंपराएँ, रीति-रिवाज, समाज-व्यवहार, भाषा-बोली अपना एक अलग और विशिष्ट पहचान रखती है। आंचलिक उपन्यास के पात्र अपने अंचल में ही पनपते, बढ़ते और संघर्षों से जूझते देखे जा सकते हैं। इसलिए उनके व्यक्तित्व का निर्माण भी आंचलिक विशेषताओं के अनुरूप होता है। अपने अंचल के प्राकृतिक परिवेश में ही उनका विकास होता है। आंचलिक उपन्यासों का कथानक भी अपने अंचल के अंदर ही भ्रमण करता है। आंचलिक उपन्यास घटनाओं तथा कार्यों की ृंखला में समाज की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के अनुरूप जूझता है। आंचलिक उपन्यास मुख्यतः मानव, समाज और संस्कृति को वाणी देने वाले ग्रामीण उपन्यास होते हैं। यदि वास्तव में मनुष्य और उसकी समस्याओं को पीछे छोड़ते हुए कोई अंचल हमारी चेतना पर अपनी विशिष्टताओं के साथ छा जाता है, हमें अन-पहचाने को पहचान पाने का सुख देता है, साधारण और समग्र से काटकर हमें अजूबे और विलक्षण के आदिम रस में डूबोता है, तो वह आंचलिक उपन्यास है।"[1]

आंचलिकता का अर्थ

'आंचलिकता' शब्द का निर्माण 'अंचल' से हुआ है। 'अंचल' शब्द से एक वैशिष्ट्यपूर्ण भू-भाग या भू-प्रदेश का बोध होता है जो अपनी स्थानीय भौगोलिक या प्राकृतिक विशेषताओं के कारण अन्य प्रदेशों से अलग दिखता है। यह अंग्रेजी में 'रीजन' (Region) शब्द का पर्याय

---

1. *मधुरेश (संपादक), 'मैला आँचल का महत्व', आलेख शिवकुमार मिश्र, 'यथार्थवाद और आंचलिक उपन्यास', तृतीय संस्करण : 2008, सुमित प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या –20*

है जबकि 'रिजनॉलिज्म' (Regionalism) शब्द आंचलिकता के संदर्भ में प्रयोग किया जाता है। 'आंचलिकता' उस प्रदेश की विशेषता है।

'अंचल' मूलतः संस्कृत का शब्द है जो 'अंच्' धातु में 'अलच' प्रत्यय के योग से बना है, जिसका अर्थ किसी 'जनपद' या क्षेत्र विशेष है से जो अपने आप में एक भौगोलिक इकाई होता है।

'हिंदी शब्द कोश' के अनुसार 'आँचल' का अर्थ है आँचल (हिं. पु.)। आँचल, धोती या दुपट्टे का छोर स्त्रियों की साड़ी का छाती पर रहने वाला 'किनार' साधु का आँचल।"[2]

इससे स्पष्ट होता है कि आँचल का अर्थ किसी वस्त्र का भाग या पल्ला अथवा कोई विशेष भाग या क्षेत्र जिसकी अपनी संस्कृति, परंपरा, रीति-रिवाज एवं मान्यताओं से लिया जाता है।

आंचलिकता की परिभाषा

'मानक हिंदी कोश' के अनुसार, "सीमा के आस-पास प्रदेश, किसी क्षेत्र का कोई पार्श्व या सिरा।"[3] यहाँ सीमा प्रदेश तथा क्षेत्र के किनारा को ही आंचलिकता कहा जाता है।

'हिंदी शब्द सागर' के अनुसार, "आँचल का अर्थ साड़ी या छोर का पल्ला, अँचरा, किनारा, तट, घाटी या किसी प्रदेश के रूप में लिया जाता है।"[4] यहाँ किसी विशेष भू-भाग को आँचल कहा गया है। इसी 'अंचल' शब्द से 'आंचलिक' शब्द बना है जिस विशेषण का भाववाचक संज्ञा है आंचलिकता जो आंचलिक वैशिष्ट्य को उद्घाटित करता है।

आंचलिक उपन्यासों की परिभाषाएँ

वर्तमान समय में सबसे लोकप्रिय विधा उपन्यास ही है। आंचलिक उपन्यासों के संदर्भ

---

2. *वसु नगेंद्रनाथ (संपादक), 'हिंदी विश्वकोश' भाग-2, पृष्ठ संख्या – 475*
3. *वर्मा रामचंद्र (संपादक), 'मानक हिंदी कोश' प्रथम खंड, पृष्ठ संख्या – 6*
4. *दास श्याम सुंदर, हिंदी शब्दसागर', भाग-2, पृष्ठ संख्या – 13*

में यह सर्वसम्मति से स्वीकार किया जाता है कि यह क्षेत्र-विशेष के जीवन सत्य को उद्‌घाटित करता एक विधा है। कुछ आलोचकों के लिए यह क्षेत्र विशेष गाँव भी हो सकता है, नगर भी। किंतु हिंदी के आंचलिक उपन्यासों की परंपरा को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि आंचलिक उपन्यास का संबंध पिछड़े हुए ग्रामीण जीवन से है। बल्कि कुछ आलोचक तो इसमें नगरबोध के प्रवेश को इसकी आंचलिकता में बाधा मानते हैं। वेदप्रकाश अमिताभ का डॉ. ज्ञानचंद गुप्त के हवाले से आंचलिक उपन्यास के संदर्भ में कथन है –"आंचलिक जीवन मुख्यतः ग्रामीण ही होता है और आंचलिक उपन्यास इस स्थानिक यथार्थ की सघनता एवं समग्रता के साथ अनुभव की प्रामाणिकता को लेकर प्रस्तुत हुए हैं।"[5] आंचलिक उपन्यासों के संदर्भ में बाबू गुलाब राय कहते हैं –"किसी आंचल विशेष की भौगोलिक परिस्थिति, वहाँ के जनवर्ग की सभ्यता एवं संस्कृति की विशिष्टता को मुख्य वर्ण्य विषय बनाकर लिखा गया उपन्यास आंचलिक कहलाता है।"[6]

अतः यह स्पष्ट है कि आंचलिक उपन्यास मुख्यतः ग्रामीण ही होता है। इसमें अंचल एक सीमित क्षेत्र, सीमित भाषा, सीमित संस्कृति की दृष्टि से उपन्यास में एक इकाई के रूप में प्रस्तुत होते हैं। इसमें इस अंचल या जनपद की बोली-भाषा, उत्सव-त्योहार, विवाह, रस्म-रिवाज, देवी-देवता, जीवन-व्यवस्था सब एक प्रकार के होते हैं। इसमें उस पिछड़े ग्रामीण अंचल का वर्णन इतने विस्तार से होता है कि वह अंचल ही नायक बन जाता है।

आंचलिकता का महत्व

'आंचलिक' शब्द अंचल से बना है। 'अंचल' का अर्थ होता है, वह क्षेत्र जो अपनी किन्हीं विशेषताओं के कारण समस्त मानव समाज या संपूर्ण भू-भाग का अंग होते हुए भी

---

5. *मधुरेश (संपादक), 'मैला आँचल का महत्व', आलेख शिवकुमार मिश्र, 'यथार्थवाद और आंचलिक उपन्यास', तृतीय संस्करण : 2008, सुमित प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या –157*

6. *गुलाबराय बाबू, 'हिंदी साहत्यि का सुबोध इतिहास', संस्करण : 2017, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल एडुकेशन पब्लीशर, पृष्ठ संख्या –164*

अपना विशिष्ट महत्व रखता है। आंचलिक विशेषण का भाववाचक संज्ञा है आंचलिकता। यह साहित्य की नवीन विधा है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास की अधिकतर उपलब्धियाँ आंचलिक कही जाने वाली कड़ियों से जुड़ती हैं क्योंकि इसमें व्यक्ति और पात्रों को नहीं बल्कि परिवेश के कण-कण को अपने ढंग से जानने, पहचानने एवं व्यक्त करने की प्रमुखता दी गई है। आंचलिक उपन्यासों में समकालीन समाज के आचार-विचार, रहन-सहन, वेश-भूषा, केश-भूषा, विश्वास तथा उनकी अन्य सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक क्रियाओं का अंकन होता है। कुछ लोग आंचलिकता के उद्‌भव को स्वतंत्रता के पूर्व तक खिंचते हैं। जो लोग नागार्जुन कृत **'बलचनमा'** (1952) को आंचलिक उपन्यास मानते हैं वहीं रेणु के **'मैला आँचल'** (1954) को प्रथम आंचलिक उपन्यास मानते हैं। आंचलिक उपन्यासों के क्षेत्र में यह विसंगति स्पष्ट नजर आती है। आंचलिक उपन्यास लोकतांत्रिक मूल्यों के आधार पर पिछड़े अंचलों में सुधार, प्रगति और परिवर्तन की आशा, आकांक्षा से प्रेरित है। आंचलिकता का तात्पर्य ही है कि कथाकार के अनुभव क्षेत्र के अंदर आने वाले अंचल-विशेष के पात्रों, उनकी समस्याओं, संस्कृति एवं प्रगति का यथार्थ चित्रण करना। इसमें 'अंचल' ही नायक की भूमिका में होता है। उस पूरे क्षेत्र का चित्र उकेरने का कार्य कथाकार करता है। इसमें कथाकार दृश्यात्मक परिवेश के साथ जीवन संदेश भी देता है। इस जीवन संदेश के बल पर वह कथा इस अंचल का होकर भी पूरे देश का हो जाता है। कथाकार यथासंभव उपन्यास को बिंब, प्रतीक से सजाकर उसे नाटकीय बनाता है। वेदप्रकाश अमिताभ के शब्दों में –"कुछ अपवादों को छोड़ दें तो 'आंचलिकता' अधिसंख्यक ग्रामीण जीवन को समग्रता में देखने-परखने और जड़ता, अज्ञान, यथास्थिति के विरुद्ध हस्तक्षेप की प्रेरणा देने वाला जनधर्मी प्रवृत्ति है। जिस दलित चेतना की आज चर्चा है, वह हिंदी आंचलिक उपन्यासों में प्रखर रूप में मौजूद है। आंचलिकता वस्तुतः लघुता की ओर दृष्टिगत का ही बहता हुआ रूप है। इसमें चुने हुए सीमित देशकाल को उपन्यासकार बहुत गहरी दृष्टि से देखता है।"[7]

---

7. मधुरेश (संपादक), 'मैला आँचल का महत्व', आलेख शिवकुमार मिश्र, 'यथार्थवाद और आंचलिक उपन्यास', तृतीय संस्करण : 2008, सुमित प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या –159

आंचलिकता और यथार्थ

आंचलिक उपन्यास यथार्थवादी तत्वों पर आधारित होते हैं। इसमें पात्रों के चारित्रिक विकास के लिए कल्पना का अधिक अवकाश उपन्यासकार के पास नहीं होता है क्योंकि इसके पात्र अपनी-अपनी बोली-भाषा बोलते हैं और अपने परिवेश के अनुरूप व्यवहार करते हैं। पात्रों का परिवेश से एकरूपता ही उपन्यास की विश्वसनीयता बढ़ाती है, जबकि अन्य उपन्यास के पात्र एक भू-खंड से दूसरे भू-खंड में जा सकते हैं, आंचलिक उपन्यास के पात्र अपने अंचल में ही पनपते, खेलते, वृद्धि करते एवं संघर्षों से जूझते लक्षित किये जा सकते हैं। इस संदर्भ में डॉ. रामदरश मिश्र का विचार है –"गाँव के, वन के, पहाड़ों के जीवन को उसके मूल स्रोतों तथा यथार्थ परिवेश के साथ पकड़कर चित्रित करना कलाकार की सच्चाई और कला धर्म का तकाजा है।"[8] इससे यह स्पष्ट होता है कि आंचलिक उपन्यास का इतिहास, भौगोलिक, सांस्कृतिक परिवेश उसका अपना होता है। उसी परिवेश के अंतर्गत मानवीय कार्य-कलाप एवं घटनाएँ यथार्थ रूप से चित्रित की जाती हैं।

सामाजिक स्थिति का अंकन

पूँजीवादी व्यवस्था, सामंतवादी शोषण, अवैध खनन, माफिया गिरोहों का आतंक, दलित, आदिवासी, कृषक, मजदूर एवं स्त्री शोषण, राष्ट्रीय संपत्ति की लूट, जाति-भेद, धार्मिक आएँबर, आर्थिक विषमता, बंधुआ प्रथा, पिछड़ापन, अज्ञान, बिचौलियों की कुटिलताएँ, भ्रष्ट नेता आदि मौलिक एवं अछूते संदर्भों को उजागर करना संजीव के लेखन के निशाने रहे हैं। वे हमेशा शोषित-पीड़ित जनता के पक्ष में खड़े हैं। देश की स्वतंत्रता के छः-सात दशक के बाद भी देश की आम जनता की सामाजिक स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं है। सरकारी योजनाएँ कागजों पर ही दम तोड़ रही हैं। दलितों की स्थिति आज भी विकट बनी हुई है। **'मैं क्यों लिखता हूँ'** शीर्षक के अंतर्गत संजीव ने स्वयं साहित्य और समाज के संबंध को स्पष्ट

---

8. मिश्र रामदरश, 'हिंदी उपन्यास एक अंतर्यात्रा', प्रथम संस्करण : 1968,, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 188

किया है –"साहित्य की लड़ाई आदमी को गुलाम बनानेवाली तमाम शक्तियों से है, चाहे वह फंडामेंटलिज्म हो, पूंजीवाद या उपनिवेशवाद, पर साहित्य अपने आप में पर्याप्त नहीं। साहित्य तो विचारों के बीज भर देता है, समाज उसकी जमीन भी है, उसका संरक्षक और भोक्ता भी। समाज पर व्यवसाइयों का ठेका है, वे सत्ता के अघोषित मनसबदार हैं, व उनकी मर्जी हुई है कि गेहूँ रोक कर अफीम की खेती हो। स्पष्ट है लड़ाई गेहूँ और अफीम के बीच है।"[9]

'सूत्रधार' उपन्यास में सामाजिक विषमता का वर्णन करते हुए संजीव लिखते हैं – "नचनियों, बजनियों और अछूतों की अलग पाँत बैठती थी। पहले बाभनों की पाँत बैठी दुआर पर, फिर साफ-सफाई, छिड़काव के बाद राजपूतों की, उसके बाद दूसरी जातियों की। इसी के साथ मूल पाँत से काफी दूर हट-हटाकर पशुओं की सार के बदबू देते कीचड़ के बगल नचनियों, बजनियों, अछूतों की पाँत बैठाई गई।"[10] **'सर्कस'** उपन्यास में सर्कस मालिक उसमें काम करने वाले कलाकारों का आर्थिक, मानसिक एवं दैहिक शोषण करते हैं। सर्कस की चकाचौंध और ग्लैमर के बीच सर्कस कलाकारों की दुख और पीड़ा दब कर रह जाती है। **'जंगल जहाँ शुरू होता है'** उपन्यास में डाकू बनने के पीछे मूल कारण जमीनों का असमान बँटवारा है। जाति-प्रथा, आर्थिक विषमता एवं असमान भूमि वितरण प्रणाली ने थारू आदिवासियों का जीवन नर्क बना दिया है। **'धार'** उपन्यास में भी पूंजीपति महेंद्रबाबू, पुलिस, ठेकेदार आदि ने मिलकर संथाल आदिवासियों का जीवन अभावग्रस्त, असुरक्षित एवं आतंकित बना दिया है। **'सावधान! नीचे आग है'** उपन्यास में कोयले खदान में काम करने वाले मजदूरों की हालत दयनीय है, उन्हें ईंधन के रूप में कोयला तो प्राप्त है, पर उसमें राँधने के लिए कोई अनाज उनके पास उपलब्ध नहीं है। 'फाँस' उपन्यास में तो आर्थिक तंगी के कारण किसान फाँसी लगाने को विवश हैं।

---

9. *गिरिश काशिद (संपादक), 'कथाकार संजीव', संपादकीय आलेख –'मैं क्यों लिखता हूँ', संस्करण : 2008, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 120*

10. *संजीव, 'सूत्रधार', पहला संस्करण : 2004, पहली आवृत्ति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 121*

इसी प्रकार उनकी कहानियों में नारी शोषण का चरम रूप देखने को मिलता है। जिस नारी को हमारे यहाँ अर्धांगिनी का दर्जा दिया गया है, जिसे देवी रूप में पूजा जाता है, जिसे बराबरी का दर्जा देने का हम दंभ भरते हैं, वही नारी कहीं जसी-बहू, कहीं कल्याणी तो कहीं आदिवासी हिंदिया के रूप में शोषित, पीड़ित है। जसी-बहू से सितई पंडित तथा हिंदिया से वर्मा जैसे लोग जबरदस्ती करते हैं, तो कल्याणी दी सेठ की रखैल है। **'वापसी'** कहानी में कुछ फौजी एक लड़की के साथ सामूहिक बलात्कार करते हैं तो **'घर चलो दुलारी बाई!'** में दुलारी बाई की सारी संपत्ति उसके रिश्तेदार ही हड़प लेते हैं।

इससे स्पष्ट होता है कि गरीबों, किसानों, मजदूरों, दलितों, नारियों की स्थिति आज भी दयनीय बनी हुई है। अगर हमें सही में समाज में समरसता लानी है तो इन वर्गों के लिए रोजगार की व्यवस्था करनी होगी, इनमें शिक्षा का संचार कराना होगा। तभी हम एक स्वस्थ समाज की कल्पना कर सकते हैं।

आर्थिक स्थिति का अंकन

हमारे देश में गरीबों और अमीरों के बीच की खाई बहुत गहरी है। आजादी के बाद अमीर और अमीर होता गया और गरीब और गरीब। इसी आर्थिक विपन्नता के कारण बहुत सारे लोगों को दो जुन का भोजन नहीं जुट पाता जबकि आर्थिक संपन्नता के बल पर मुट्ठी भर लोग सारे ऐश-ओ-आराम से लैस हैं। **'मरोड़'** कहानी में प्राथमिक विद्यालय के शिक्षक दीनानाथ जी अपनी बूढ़ी माँ, बीमार पत्नी और बच्चों के भरण-पोषण एवं दवा के लिए ट्यूशन पढ़ाते हैं। उन्होंने अपने दिन का सारा समय चंदानिया जैसे सेठ के बच्चों को पढ़ाने के लिए बेच दिया है। **'पाँव तले की दूब'** उपन्यास में आदिवासियों के घरों का वर्णन संजीव ने किया है –"वे इतने गरीब थे कि कपड़ों के नाम पर चिथड़े का कच्छा पहने हुए थे, पुट्ठे तक खुले हुए। औरतें जैसे-तैसे बदन ढके हुए थीं। बच्चे कंगालों जैसे।"[11] **'सावधान! नीचे आग है'**

---

11. *संजीव, 'पाँव तले की दूब', प्रथम पॉकेट बुक्स संस्करण : 2005, पुनर्मुद्रण : 2009, 2013, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, पृष्ठ संख्या – 14*

उपन्यास में श्रमिक कार्य करते हुए भी कर्ज में डूबे रहते हैं। उनकी कहानियों में तो श्रमिक ओवरटाइम के काम के लिए दूसरे श्रमिक के बीमार होने की दुआ तक माँगते हैं तो रंगई बहू की छोटी बच्ची अपनी बोमी तक को काछकर खाने के लिए विवश है।

इस प्रकार संजीव के कथा साहित्य में आर्थिक स्थिति का अंकन सजीव एवं यथार्थवादी रूप में हुआ है। कहीं भी यह वर्णन उपर से लादा हुआ प्रतीत नहीं होता है।

धार्मिक स्थिति का अंकन

आदिकाल से ही धर्म हमारे समाज में मेरूदंड के समान महत्वपूर्ण रहा है। यह दर्शन, अध्यात्म तथा विभिन्न विचारों के क्रिया-कलापों से सम्बद्ध रहा है। इसका कार्य हमेशा समाज को जोड़ना रहा है। अपने विवेक के बल पर ही मनुष्य ने एक अदृश्य एवं अलौकिक शक्ति की कल्पना कर ली है। और इसी अलौकिक शक्ति की कृपा प्राप्त करने के लिए वह विभिन्न संस्कारों से संपन्न होता रहता है। परंतु मनुष्य आज धर्म के सच्चे अर्थों को भूल कर बाह्य आएँबर, पूजा-पाठ, अंध-विश्वास, जादू-टोना, तंत्र-मंत्र, पाप-पुण्य आदि को ही धर्म मान बैठा है। “ **‘पाँव तले की दूब’** उपन्यासिका में जॉन गुरु (ओझा) के कहने पर आदिवासी लोग एक महिला को डायन घोषित कर उसे पीट-पीट कर मार डालते हैं। **‘महामारी’** कहानी में गाँव में चेचक फैलने पर लोग दवा करने के बजाय छोहरी चढ़ाकर एवं पचरा गाकर इस महामारी से मुक्ति चाहते हैं। **‘जंगल जहाँ शुरू होता है’** उपन्यास में भी झाड़-फूँक, पूजा-पाठ (लखराँव) ओझा, देवी-भवानी आदि के प्रति अंध श्रद्धा है।

इसी प्रकार संजीव के पूरे कथा-साहित्य में धार्मिक आएँबर, अंधश्रद्धा, मनौति एवं विभिन्न कर्मकांडों का वर्णन परिलक्षित होता है।

भौगोलिक स्थिति का वर्णन

प्रकृति, परिवेश या भौगोलिक सीमाओं का वर्णन किसी भी कथा-साहित्य को सजीवता प्रदान करता है। आंचलिक कथा-साहित्य में तो यह लगभग सार्वभौम सत्य है कि किसी निश्चित क्षेत्र-विशेष या अंचल विशेष के जीवन सत्य को ही उजागर किया जाता है। कुछ

आलोचकों का मानना है कि यह अंचल-विशेष गाँव भी हो सकता है और शहर भी। लेकिन हिंदी के आंचलिक उपन्यासों को देखते हुए लोग स्वीकार करते हैं कि आंचलिकता का संबंध ग्रामीण जीवन से ही है। लेकिन यह भी सत्य है कि ग्रामीण जीवन को केंद्र में रखकर लिखने के बावजूद भी प्रेमचंद के उपन्यास आंचलिक नहीं हैं। आंचलिक उपन्यासकारों में मुख्यतः फणीश्वरनाथ रेणु का नाम आता है। दूसरी तरफ नगरों और कस्बों के विशिष्ट जीवन के चित्रण पर आधारित उपन्यास आंचलिक उपन्यास नहीं माने जाते हैं बल्कि कुछ आलोचक तो आंचलिकता में नगरबोध के प्रवेश को ग्रामीण जीवन से सीधा टकराहट मानते हुए इसे आंचलिकता के प्रभावहीन होने का कारण मानते हैं। इसलिए आंचलिक कथा-साहित्य में समाज या किसी विशेष भूखंड के जन-जीवन, वातावरण का यथार्थवादी रूप प्रस्तुत करना आवश्यक हो जाता है। यह वर्णन मुख्यतः दर्पण के समान स्पष्ट होना चाहिए जिसमें उस अंचल विशेष के धूल-धुसरित ग्रामीण समाज के जीवन की वेदना, दुख, दरिद्रता, प्रेम, जीवटता आदि का स्पष्ट चित्रण हो। संजीव ने अपने कथा-साहित्य में प्रकृति, वातावरण और भौगोलिक स्थितियों का यथार्थवादी और मर्मस्पर्शी चित्रण किया है।

'सावधान! नीचे आग है' उपन्यास में संजीव धुँआसे से भरे झरिया के कोयलांचल क्षेत्र के परिवेश का वर्णन करते हुए लिखते हैं –"लगा, ट्रक एक टीले पर खड़ा है। न-न, टीला नहीं, पुल! नीचे गंदे पानी और कोयले के अंबार के बीच दबी कोई रेल की पटरी दबे सांप की तरह निकलने को छटपटा रही थी। सामने धुआँये हुए लैंडस्केप का शाम की रक्ताभा में नहाया तिलिस्म दूर-दूर तक फैला हुआ था। लगा, अगल-बगल कोयले के स्तूप, बिखरे-बिखरे मकान और दुकानों की गुमटियाँ, छोटी-छोटी इन्सानी आकृतियाँ धुंध में डूबी दूर से आ रहे हल्के शोर की ओर उत्सुकता से देख रही थीं।"[12]

अर्थात कथाकार झरिया के भौगोलिक स्थितियों से हमारा परिचय कराते हुए झरिया शहर के गलियों-उपगलियों, जमी-भीड़, कोक-प्लांट, कोलियरियों के टॉप-गियर, कोयले के

---

12. *संजीव, 'सावधान! नीचे आग है", पहला पेपरबैक्स संस्करण : 2018, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 13*

स्तूपाकार मलबे और ढूँहों, ट्रकों की कतारों से अंचल-विशेष का चित्रण हमारी आँखों के सामने उकेर देता है, और यह संकेत दे-देता है कि इन्हीं भौगोलिक स्थितियों के अनुरूप ही वहाँ के लोगों का जन-जीवन उपन्यास में चित्रित है।

'रह गईं दिशाएँ इसी पार' उपन्यास में संजीव पश्चिम बंगाल के दक्षिण चौबीस परगना जिले में स्थित सुंदरवन के भूगोल को छूते हैं –'2585 वर्ग किलोमीटर का यह वन्य क्षेत्र 54 द्वीपों में पसरा हुआ है। इनमें चार द्वीप हल्दीबाड़ी, साईंमारी, बाघमारा और चामटा व्याघ्र प्रजनन के लिए सुरक्षित रखे गए हैं। नदी-नालों और अपवाही धाराओं का मकड़-जाल बिछा हुआ है, जिसमें फँसे 54 द्वीप जाल में मछली की तरह तड़प रहे हैं।"[13] दलदली, कीचड़ युक्त काली मिट्टी एवं गंदी पानी की नदियों से युक्त इस भू-खंड के कठोर जीवन संघर्ष से हमारा परिचय कराते हुए संजीव यहाँ के फूड़-हैबीट्स पर चर्चा करते हैं। फल के अभाव में यहाँ शाकाहारी बंदर मछली खाते हैं तथा बाघ समुद्र का खारा पानी पीते हैं। मनुष्य का खून भी खारा होता है। अतः यहाँ के बाघ मैन इटर्स हैं। अतः संजीव ने साफ कर दिया है कि किसी भी क्षेत्र के जन-जीवन पर वहाँ के भौगोलिक स्थितियों का अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में संजीव इस क्षेत्र की भौगोलिक सीमाओं को स्पष्ट करते हैं –"उत्तर में पड़ोसी देश नेपाल, पश्चिम में पड़ोसी प्रांत उत्तर-प्रदेश, बीच में प्रायः दुर्भेद्य जंगल-पहाड़, मीलों फैले गन्ने के खेत, नारायणी नदी के तिलस्मी कछार! ...दुर्गम पहाड़ों, अनएक्सेसीबुल फारेस्ट्स (दुर्गल जंगलों), नदी, नालों, गन्ने के खेतों से अटा पड़ा है यह क्षेत्र!"[14] कथाकार भौगोलिक क्षेत्र का वर्णन करके उस अंचल विशेष का नक्शा खींच देते हैं और संकेत दे देते हैं कि वहाँ के थारू आदिवासियों के जनजीवन पर उस भौगोलिक क्षेत्र का कितना प्रभाव पड़ने वाला है। संजीव आगे इस क्षेत्र के गंडक नदी के विस्तार और उफान

---

13. *संजीव, 'रह गईं दिशाएँ इसी पार', पहला संस्करण : 2012, पहली आवृत्ति : 2010, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 30*

14. *संजीव, 'जंगल जहाँ शुरू होता है', पहला संस्करण : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 8*

की भी चर्चा करते हैं। उफान के समय यह नदी कई गाँवों को निगल जाती है और बाढ़ उतराने पर नदी के दूसरे किनारे पर नयी जमीने उगल देती है। सवर्ण जातियाँ इन नदियों द्वारा उगली गई जमीनों पर बल्लम गाड़ कर अपना कब्जा जमा लेती हैं तथा बाढ़ के समय अपना घर और खेत नदी के पेट में गँवा कर अवर्ण जातियाँ कंगाल होकर जमींदार का लठैत या हलवाह बन जाते हैं और फिर डाकू। इससे स्पष्ट है कि यहाँ की भौगोलिक परिस्थितियाँ ही यहाँ के जन-जीवन को प्रभावित करती हैं और सीधे-सीधे गरीब लोगों को डाकू बनने पर मजबूर करती हैं।

भारतीय संस्कृति

विश्व में भारतीय संस्कृति की एक अलग पहचान है। भारतवर्ष व्यापक क्षेत्र में भौगोलिक स्थिति और परिवेश की विविधता को समेटे सबसे प्राचीनतम एवं श्रेष्ठ संस्कृति है। संस्कृति के क्षेत्र में भारतीय संस्कृति विश्व की जननी है। भारतीय संस्कृति की परंपरा इतनी सुदृढ़ और सशक्त रही है कि आदिकाल से आज तक इतने प्रहारों को झेलते हुए भी अजर-अमर रही है जबकि इसी दौरान विश्व की कई संस्कृतियाँ नष्ट हो चुकी हैं। भारतीय प्राचीन ग्रंथ वेद, उपनिषद, गीता, हमारी संस्कृति के प्रमुख आधार रहे हैं। विश्व के अनेक देशों के लोग विविध संस्कृतियों के साथ भारत में आए और भारतीय संस्कृति ने सबको अपने आंचल में समेटा। वे सारी संस्कृतियाँ भारतीय संस्कृति में घुल-मिल गईं और इस प्रकार भारतीय संस्कृति निरंतर समृद्ध होती रही है। भारतीय संस्कृति *'अतिथि देवो भवः'* तथा *'वसुधैव कुटुम्बकम्'* की भावना पर आधारित है। इतिहास गवाह है कि सारे विश्व से आश्रय की तलाश में आए विभिन्न संस्कृतियों को हमने गले लगाया है। पूरे विश्व को हमारी संस्कृति अपना परिवार समझती है। अतः हम विश्व कल्याण की भावना रखते हैं। वेदों, उपनिषदों के अलावा भारतीय संस्कृति के मूल तत्व एवं आधार अध्यात्म और चिंतन में भी परिलक्षित होते हैं। अध्यात्म का मूल आधार लोगों में ईश्वरीय शक्ति के प्रति आस्था है। विभिन्न धर्मों एवं मतों के लोग सत्य-असत्य, आत्मा-परमात्मा, त्याग-तपस्या, सदाचार, प्रेम और शांति के अस्तित्व पर विश्वास रखते हैं। हमारे यहाँ के लोगों में जनकल्याण के लिए त्याग की भावना है और इसी त्याग की भावना ने हमें संतोषी बनाया है, मानवता के प्रति सहायक और सहानुभूत बनाया है। जहाँ भारतीय संस्कृति में अपने धर्मों के प्रति अटूट आस्था है वहीं दूसरी ओर दूसरों

के धर्मों के प्रति सम्मान भी है। भारतीय संस्कृति में हमारे यह धार्मिक आदर्श मोक्ष की प्राप्ति हेतु हैं। मोक्ष प्राप्ति के उद्देश्य से हम जीवन के विभिन्न कर्मकांडों में हिस्सा लेते हैं। मोक्ष के साथ-साथ चर्तुश्राम व्यवस्था और अर्थ का भी विशिष्ट स्थान हमारी संस्कृति में रही है जिससे आध्यात्मिकता और भौतिकता का एक समन्वय भारतीय जीवन में देखने को मिलता है। अनेकता में एकता की पोषक, गंगी-जमुनी तहजीब की वाहक, राम, कृष्ण, शिव की उपासक हमारी संस्कृति सदा ही गतिशील रही है। गुरु का सम्मान और बड़ों के प्रति आदर, श्रद्धा हमारी संस्कृति की विशेषता रही है। अतः भारतीय संस्कृति का उद्देश्य विश्व कल्याण एवं *'सर्वे भवंतु सुखिन'* के भाव से ओत-प्रोत है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री पितरिम सोरोकिन के अनुसार, "संस्कृति वह है जो व्यक्तियों की अन्तःक्रियाओं में निहित है। व्यक्तित्व जब अन्तःक्रिया करते हैं तब इसमें उनके अर्थ (meanings), मूल्य (values) और मानक (norms) होते हैं। ये अर्थ, मूल्य और मानक जो अन्तःक्रिया के माध्यम बनते हैं, संस्कृति हैं। भारत में जब हम अपने माता-पिता से मिलते हैं तो उनसे हाथ नहीं मिलाते, आदर से उनके चरण छूते हैं। ये मूल्य हैं जिन्हें हम उम्रवाले लोगों की अन्तःक्रिया में काम में लेते हैं।"[15]

रहन-सहन

भारतवर्ष के अलग-अलग क्षेत्रों के रहन-सहन में विविधता है। व्यक्ति-विशेष के रहन-सहन में ही उसकी संस्कृति छिपी होती है। उत्तर भारत और दक्षिण भारत के लोगों के रहन-सहन में भिन्नता है तो अमीर-गरीब के जीवन शैली में भी विविधता है। ग्रामों और शहरों के लोगों के रहन-सहन में भी समरूपता नहीं है। लोगों के रहन-सहन वहाँ की भौगोलिक संरचना, जलवायु, रोजगार, आर्थिक आय, संस्कृति, संस्कार इत्यादि तत्वों पर निर्भर करते हैं। हमारे देश के रहन-सहन में विविधता हो सकती है, परंतु हमारे संस्कार आज भी एक हैं और वह काफी समृद्ध, सशक्त और जनकल्याणमुखी हैं। संजीव के कथा-साहित्य में अलग-अलग क्षेत्रों के रहन-सहन का काफी मात्रा में वर्णन मिलता है –

---

15. दोषी एस.एल. एवं जैन पी.सी., 'प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक', संस्करण : 2001, रिप्रिंट : 2013, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृष्ठ संख्या – 330

'सागर सीमान्त' कहानी में मछुआरों के रहन-सहन का सजीव चित्रण उभर कर सामने आया है। मछुआरे जान जोखिम में डालकर बीच समुद्र में मछली पकड़ने जाते हैं, परंतु इनके पास मछली पकड़ने के न्यूनतम संसाधन जाल और नाव भी नहीं होते हैं। जाल और नाव भी महाजन के होते हैं। ये मछुआरे सिर्फ भाड़े के टट्टू होते हैं। इनके द्वारा पकड़ी गई मछलियों पर महाजन अपना अधिकार जमा लेता है और इन्हें थोड़ा-बहुत मछली मजदूरी के रूप में दे देता है। मछुआरों की पत्नियाँ भी इन्हीं महाजनों के प्रोसेसिंग यूनिट में काम करती हैं। यहाँ नहीं बिकी हुई मछलियों को अलगाना, उनकी आँत निकालकर उनमें नमक भरकर सुखाना इत्यादि कार्य होता है। इतना कार्य करने पर भी इन मछुआरों का जीवन बद से बदत्तर बना हुआ है। इनके घरों की स्थिति जीर्ण-शीर्ण है –"खिड़की की झिर्री खुली है। बाँस-पुआल की छाजन के परखच्चे उड़ रहे हैं। धार-धार चू रहा है पानी! ...उसका झोंपड़ा एक जर्जर नाव बन गया है।"[16]

'दुश्मन' कहानी में संजीव ने शहरी बस्तियों में रहने वाले गरीब महिलाओं-पुरुषों के रहन-सहन पर प्रकाश डाला है। एकाध को छोड़कर किसी के भी पास रोजगार का स्थायी साधन नहीं है। कोयला चोरी, सूअर, मुर्गी, बत्तख पालन तथा दूसरों के घरों में बर्तन-चौका यहाँ के नारी-पुरुष का कमाई का जरिया है। उनके रहने की जगह अत्यंत नारकीय है –"सारा कचरा यहीं उलीच जाती है मुंसीपाल्टी की गाड़ियाँ। इसी कचरे से बने हैं टीले, घाटियाँ और डबरे। इन्हीं डबरों के तट पर, इन्हीं घाटियों में आबाद है इस शती की सबसे अर्वाचीन सभ्यता।"[17] इससे पता चलता है कि गोबर चुनकर चिपरी पाथकर, कोयला और मुर्गियों के अंडे बेचकर ये अत्यंत सरल तरीके से रहते हैं।

'मरोड़' कहानी में मास्टर दीनानाथ का जीवन अत्यंत दयनीय है। प्राथमिक स्कूल के

---

16. *संजीव, 'सागर सीमान्त', संजीव की कथा यात्रा दूसरा पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 192*

17. *संजीव, 'दुश्मन', संजीव की कथा यात्रा दूसरा पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 328*

मास्टरी के अलावा उन्हें ट्यूशन भी करना पड़ता है फिर भी आर्थिक स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं है। स्कूल के वार्षिकोत्सव में अपने बीवी बच्चों में ढंग के कपड़े-लत्ते, रुचियाँ, संस्कार की कमी के कारण अकेले शामिल होते हैं। लोगों के पूछने पर बेटी के बीमारी का बहाना बनाते हैं। पर चंदानिया सेठ तो उनकी बेटी को देखने के बहाने मास्टर साहब के घर पर ही चले आते हैं। मास्टर साहब अपनी गरीबी को ढकने का प्रयास करते हैं। बीवी, बच्चों को अंदर कमरे में कर देते हैं। मिठाई का प्लेट मेहमान के आगे बरामदे में बिछे खाट पर ही पेश किया जाता है। चंदानिया सेठ जरा-सा चख लेते हैं और बाकी सब अंदर से ताक-झांक कर रहे बच्चों को दे देते हैं –"बच्चे ऐसे टूट पड़े थे, जैसे बारात में जूठी पत्तलों पर भिखारियों के लड़के। शर्म से गड़ गए थे दीनानाथ उस दिन।"[18]

'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में थारू आदिवासियों की स्थिति अत्यंत दयनीय है। इनके पास रोजगार के कोई स्थायी साधन नहीं हैं। जंगलों के पत्तों और सूखी लकड़ियों से इनकी जो थोड़ी-बहुत कमाई हो जाती थी, तो अब जंगलों पर भी वन-विभाग का कब्जा है। ये थारू आदिवासी पुलिस और डाकू दोनों के दोहरे शोषण से त्रस्त हैं। डाकू के तलाश में जब डी.एस.पी. कुमार मकरंदापुर मलारी के गाँव पहुँचते हैं तो टार्च की रोशनी में एक-एक घर, एक-एक झोपड़े की दीनता और बदहाली का आलम सामने आ जाता है –"ओसारे से लगा दरवाजा। दरवाजे से अन्दर तीन कमरे, सभी कच्चे, खपड़ैल, माटी के खिलौने, जॉत, ओखल, सूप, मकई के बालों के झोंपे, लूगे-लत्ते, गगरी, बोतल, सिल, चूल्हा-बरतन-रोशनी सब पर फिसल रही थी।"[19] अतः उपरोक्त कथन यह प्रमाणित करता है कि थारू आदिवासियों का जीवन कितना दुःख, दरिद्र, बदहाली और अभाव से ग्रसित है। इनका रहन-सहन बिल्कुल सरल और साधारण है।

---

18. *संजीव, 'मरोड़', संजीव की कथा यात्रा दूसरा पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 44*

19. *संजीव, 'जंगल जहाँ शुरू होता है', पहला संस्करण : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 174*

'धार' उपन्यास में संथाली आदिवासियों के रहन-सहन का सजीव चित्रण हुआ है। यहाँ के लोगों की भी प्रमुख समस्या रोजगार है, इसलिए अवैध कोयला चोरी, तेजाब फैक्ट्री में काम ही इनके आय के प्रमुख साधन रह गए हैं। आर्थिक विपन्नता के कारण इनका रहन-सहन अत्यंत सीधा-साधा और सरल है। कथाकार लिखते हैं –"छोटे-छोटे घर –छाजन फूस की हो या खपड़े की, सभी घरों में एक बात आम थी – दीवारों का ऊपरी भाग सफेद चिकनी मिट्टी से और नीचे स्याह स्लेटी मिट्टी के लिपे हुए –ठीक सौंताल औरतों की किनारीदार साड़ियों की तरह। ज्यादातर घरों के सामने कोने में पत्थर की छिछली नाद जिसमें माँड़ डालते ही सूअरों और छौनों का दल घों-घों करते हुए आ जुटता और मंगर का मन कै करने-करने को होता।"[20] अतः संजीव के पूरे कथा-साहित्य में गरीब, दलित, आदिवासी, पीड़ित जनता के रहन-सहन की चर्चा अधिक हुई है। सुविधा सम्पन्न अमीर जनता के रहन-सहन की चर्चा अपेक्षाकृत कम है।

खान-पान

जीवन रक्षा के लिए प्रत्येक जीवधारी को भोजन की आवश्यकता पड़ती है। यहाँ तक कि पेड़-पौधें भी प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया द्वारा अपना भोजन तैयार करते हैं। प्राचीनकाल से आजतक लोगों के खान-पान के तौर-तरीके में बहुत सुधार आया है। हमारे देश में अलग-अलग संस्कृति के लोग रहते हैं और उनके खान-पान में भी विविधता है। जैसे उत्तर भारत के लोगों का मुख्य भोजन दाल, चावल, रोटी, सब्जी आदि है। तो दक्षिण भारतीय परिवारों में इडली, साम्बर, डोसा, बड़ा इत्यादि खाया जाता है। परंतु अब भारत में मिश्र संस्कृति का प्रभाव उनके व्यंजनों में भी लक्षित किया जा सकता है। उत्तर भारत के लोग भी अब इडली, साम्बर खाने लगे हैं तो दक्षिण भारत के लोग दाल, रोटी, सब्जी। आजकल लोग होटलों, रेस्टूरेंटों में पिजा, वर्गर, चाइनीज, इटैलियन खाते हुए मिलते हैं। हमारे यहाँ शाकाहारी लोगों की संख्या अधिक है, ये मूलतः फल, दूध, दही, छाछ, सलाद, रोटी, भात, दाल, घी, मक्खन

---

20. संजीव, 'धार', पहला संस्करण : 2018, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या –37

इत्यादि अपने भोजन में लेते हैं। धीरे-धीरे जीवन शैली में ऐसा बदलाव आया है कि सुबह के नाश्ते में रोटी, सब्जी का स्थान ब्रेड, बटर और बिस्किट, केक ने ले लिया है। रात को बहुत सारे लोग मैगी, चाउमीन खाकर सो रहे हैं। दूध के स्थान पर कोल्डड्रींक्स पी रहे हैं। प्रमुख समाजशास्त्री पितरिम सोरोकिन ने पश्चिमी संस्कृति को इन्द्रियपरक संस्कृति यानी भौतिक सुख-सुविधाओं के पीछे भागनेवाली पतनशील संस्कृति माना था जबकि भारत में भावानात्मक संस्कृति थी –"इस संस्कृति का दबाव सत्य, अहिंसा, ज्ञान, कला, धर्म, आचार और पवित्र अर्न्तसंबंधों की ओर होता है। ...आज यदि सोरोकिन जीवित होते तब उन्हें ज्ञात होता कि उनके समय की भावनात्मक भारतीय संस्कृति अब इन्द्रियपरक संस्कृति की ओर मुड़ रही है। इससे एक और तथ्य का पता लगता है। भारत का यह सामाजिक परिवर्तन अनियमित है। यदि यह नियमित होता तो इसे इन्द्रियपरक संस्कृति की ओर न मुड़कर आदर्शात्मक संस्कृति (Ideation of culture) की ओर मुड़ना चाहिये था।"[21] परंतु हमारे गाँवों में आज भी आदर्श भोजन की कमी है। गाँवों और शहरों के कुछ गरीब बस्तियों में आज भी खान-पान का मुख्य आधार भूख ही है, शौक नहीं। उन्हें पेट भरने के लिए जो भी भोजन प्राप्त होता है, उसे ईश्वर का आशीर्वाद समझकर ग्रहण करते हैं। संजीव के कथा-साहित्य में परिस्थितियों के अनुरूप खान-पान के वर्णन में विविधता है।

'आरोहण' कहानी में उन्होंने दिखाया है कि पहाड़ी लोगों के पास भोजन के संसाधन सीमित होते हैं। चारों तरफ बर्फ जमने के कारण यहाँ फसलें और पेड़-पौधे मारे जाते हैं, इसलिए वहाँ जो भी थोड़ा-बहुत उपजता है, वही इनके खान-पान की दिनचर्या है –"नाश्ते पर पहली बार सब साथ बैठे, आग के गिर्द। भुनी हुई मक्के की बाल और चाय! भाभी सेंक-सेंककर दिए जा रही थीं। वे नमक-मिर्च के साथ चबाते जा रहे थे।"[22] कहानी का नायक रूप

---

21. *दोषी एस.एल. एवं जैन पी.सी., 'प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक', संस्करण : 2001, रिप्रिंट : 2013, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृष्ठ संख्या – 334*

22. *संजीव, 'आरोहण', संजीव की कथा यात्रा दूसरा पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 320*

यहाँ पर मक्के की जैसी-तैसी फसल, सेव और देवदार के मरियल पौधों को भी प्रकृति का चमत्कार मानता है, वरन् और ऊँची पहाड़ियों पर तो बर्फ के सिवा कुछ की भी खेती नहीं होती है।

'सागर सीमान्त' कहानी में मछुआरों के खान-पान पर चर्चा किया गया है –"फातिमा ने जबरन कपड़ा बदल दिया। लालटेन जला गई। चाय ले आई। मछली की मूँडी का झोल, भात और मछली की चटनी भी...।"[23] अतः मछुआरों को उनकी कड़ी मेहनत के बावजूद भी कैंटीनेंटल भोजन नहीं अपितु उपरोक्त भोजन ही प्राप्त होता है। वे मछलियों को सुखा कर भी खाते हैं।

'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में काली गरीब आदमी के भोजन का काव्यात्मक लहजे में वर्णन करता है। वह कहता है कि साधारण व्यक्ति के लिए पेट भर भोजन प्राप्त होना ही स्वर्ग की प्राप्ति के समान है –

"गेहूँ की रोटी, और जड़हने का भात,
गल-गल नेमुआ और घिउ तात।"[24]

परंतु यह भी सच्चाई है कि गरीब और दलित व्यक्तियों को सारा दिन के मेहनत के बाद भी कहीं-कहीं पानी तक नसीब नहीं होता है। पानी पीने में भी उसे सावधानी बरतनी पड़ती है कि कहीं किसी बड़मनई का कुआँ वह न छू दे। वैशाख के निचाट दुपहरिया के धधकते आवाँ में कई कोस दूर से बाबूसाहब का न्योता लेकर आए भिखारी नाई को पानी और भोजन तो सिर्फ कल्पना में ही प्राप्त हो सकता है –"पियास फिर से उगी आ रही है छिली हुई दाढ़ी की तरह। चलो अब तो वहीं चल कर पानी पीना है। बड़का बतासा आएगा। मउनी भर क चबेना

---

23. *संजीव, 'सागर सीमान्त', संजीव की कथा यात्रा दूसरा पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 192*

24. *संजीव, 'जंगल जहाँ शुरू होता है', पहला संस्करण : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 191*

गमछे में उलट दिया जाएगा, नमक-मिर्च अलग से ...अरे वो सब रहने दो ठाकुर, गमछे में बाँध लो। अभी तो भोजन तैयार है। इतनी दूर से आए हो, पहले भोजन कर लो, थकान मिटा लो, फिर सनेश (संदेश) कहना। चौड़ी चकली पूड़ियाँ! दो किसिम की तरकारी, बुनिया, चटनी...'अरे थोड़ा दही नहीं दे दिए! मन-ही-मन भोजन का आस्वाद लेते हुए बैठके से थोड़ी दूर पर आकर खड़ा हो जाता है युवक!"[25] अतः यहाँ अमीर और गरीब लोगों के भोजन में अंतर स्वतः स्पष्ट है। गरीबों के लिए तो स्वादिष्ट भोजन दूर की बात है उन्हें तो दो जून का भोजन भी ठीक से नसीब नहीं होता था। कई दिन और रात फाँके में गुजरते थे। इसी तथ्य को कथाकार ने **'महामारी'** कहानी में उद्धृत किया है –"मुझे नहीं याद आता कि दो-चार संपन्न गृहस्थों को छोड़कर किसी के यहाँ भी दोनों जून भोजन बनता हो। आम हमारा सबसे बड़ा सहारा बनता। चटनी या पके आमों के रस से सूखी रोटियाँ हम पेट के हवाले कर लेते। बाद में गुठलियों के ढूह भी हमारे काम में आ जाते ...सब्जी में यदि आलू को छोड़ दें, जिस पर हम तीन महीने गुजारा करते, तो सब्जी खाना हमारे लिए विलासिता थी।"[26]

आज भी गाँवों के गरीबों और दलितों के टोलों में तथा शहरी बस्तियों में भोजन के स्तर में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया है। गाँव के गरीब क्या खाएँगे यह स्वाद पर नहीं बल्कि उनकी नाम मात्र की जमीन के उपज पर निर्भर है, अर्थात अगर आलू की पैदावार हुई तो महीनों चावल और सिर्फ आलू की सब्जी पर गुजारा होता है। अगर दलहन की पैदावार अच्छी है तो महीनों चावल और दाल पर गुजारा करना पड़ता है। शहरी बस्तियों की आमदनी इतनी सीमित है कि उसमें भी भात, दाल, रोटी, दो किस्म की सब्जी विलासिता है। 'धनुष टंकार' कहानी में संजीव ने मजदूरों के भोजन की एक झांकी प्रस्तुत की है –"अपनी-अपनी बासी

---

25. संजीव, 'सूत्रधार', पहला संस्करण : 2004, पहली आवृत्ति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 13

26. संजीव, 'महामारी', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 236-237

रोटी-प्याज, सत्तू या भात-खिचड़ी के टिफिन कैरियर और पोटलियों को अपने-अपने टपरों में रखकर ...चल पड़ते अपने-अपने काम की जगह पर।"[27]

कथाकार संजीव का जीवन एक दम सादगी भरा रहा है और उनका खान-पान बिल्कुल साधारण। वे दिखावे की जिंदगी में विश्वास नहीं करते हैं। इस बात को प्रमाणित करते हुए कथाकर नरेन कहते हैं, जब वे उनसे मिलने पहली बार आसनसोल के कुल्टी पहुँचते हैं– "पहली बार जब मैं उनसे मिलने गया था, उस रोज की बात भी मुझे खूब याद है। गीला होकर ढेला बन गया भात और पतली दाल, जिसमें नमक भी शायद नहीं पड़ा था। आपस में बातें करते-करते सहज भाव से हम दोनों ने यही खाना खाया था।"[28] इसी प्रकार इनके कथा-साहित्य के पात्र भी दिखावा नहीं करते हैं।

'धार' उपन्यास में संथाल आदिवासियों का जीवन अत्यंत विपर्यय है। अपने भोजन के लिए वे विभिन्न पशु-पक्षियों का शिकार करते हैं। लंबे नुकीले भाला को वे पेड़ पर बैठे पक्षियों के पेट में खुभो कर मैना, बगुले, सारस का शिकार कर लेते हैं। कभी कभार अगर रेल से कोई गाय, बछड़ा या बकरा कट जाता तो इनको भोज खाने को मिल जाता है। सौतालों के भोज-उत्सव के बारे में शर्मा मंगर को बताते हैं –"सौंतालों की यह परंपरा है, वे भोज-उत्सव में बछड़े का मांस उसी तरह खाते हैं जैसे हम दिकू लोग बकरे का मांस। यह दिकुओं का भोज नहीं है, सौतालों का भोज है।"[29]

वेश-भूषा

भारतवर्ष विभिन्न संस्कृतियों के मेल-बंधन से निर्मित एक वृहत्त देश है। विभिन्न संस्कृतियों का यहाँ की वेश-भूषा पर गहरा प्रभाव पड़ता है। अलग-अलग अंचल और संस्कृति के लोगों

---

27. *संजीव, 'धनुष टंकार', संजीव की कथा यात्रा दूसरा पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 167*
28. *काशिद गिरिश (संपा.) 'कथाकार संजीव', 'जिंदगी जिंदगी तुझसे शिकवा करूँ तो कैसे करूँ', संस्करण : 2008, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 49*
29. *संजीव, 'धार', पहला संस्करण : 2018, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 51*

की वेश-भूषा में विभिन्नता है। यह विभिन्नता परंपरा, प्रकृति, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक विभिन्न कारणों से हो सकती है। संजीव के कथा-साहित्य में भिन्न-भिन्न परिवेशों के चित्रण के कारण वेश-भूषा पात्रानुकूल है।

'पाँव तले की दूब' उपन्यास में विभिन्न आदिवासी घरों में घुमते हुए कथाकार उनकी आर्थिक दुर्दशा और वेश-भूषा का वर्णन करते हैं –"वे इतने गरीब थे कि कपड़ों के नाम पर चिथड़े का कच्छा पहने हुए थे, पुट्ठे तक खुले हुए। औरतें जैसे-तैसे बदन ढके हुए थीं।"[30] इसी उपन्यास में आगे भी वेश-भूषा का वर्णन है जहाँ छात्र पैंट-शर्ट और गोग्लस में तथा नर्सें, शिक्षिकाएँ और छात्राएँ साड़ियों में हैं। कुछ लोग नेता के तरह चुस्त पजामे, कुर्ते में भी हैं परंतु प्रौढ़ों और वृद्धों के अधिकांशतः बदन पर कमीज या गंजी भी नहीं है सिर्फ मटमैली धोती है। कुछ प्रौढ़ मुचड़े हुए पैंट को रस्सी से कमर में बांध कर पहने हुए हैं।

'सूत्रधार' उपन्यास में नाई जाति के लोगों की आर्थिक दुर्दशा का वर्णन किया गया है। उन्हें तन ढकने के वस्त्र के रूप में मुर्दे के कफन का प्रयोग करना पड़ता था, वह भी डोम से काफी लड-झगड़ कर प्राप्त करना पड़ता था –"डोम और जजमान से मुर्दे का कफन या उतरन जो भी मिला, उसी कफन से मेहरारू लोगन का झूला (कुर्ता) झुलिया और गमछी बनी।"[31] जबकि दूसरी ओर अभिनय करते समय लोकनाट्यकार भिखारी ठाकुर की वेश-भूषा पात्रानुकूल होती थी। वे उस समय उटंगी दशरथी धोती, छिकली मिरजई, सिर पर पगड़ी और आँखों पर चश्मा का प्रयोग करते थे।

'खिंचाव' कहानी में नट-बाजीगरों की महिलाएँ कुर्ती, घाघरा तथा पुरुष पगड़ी बांधकर करतब दिखातें हैं, जबकि **'मानपत्र'** कहानी में संगीत की शिक्षा लेने आया दिपंकर की वेश-भूषा को देखकर उस्ताद प्रसन्न हो जाते हैं –"कहाँ वो मलमल, मखमल, जरी और किमखाब!

---

30. *संजीव, 'पाँव तले की दूब', प्रथम पॉकेट बुक्स संस्करण : 2005, पुनर्मुद्रण : 2009, 2013, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, पृष्ठ संख्या – 14*

31. *संजीव, 'सूत्रधार', पहला संस्करण : 2004, पहली आवृत्ति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 164*

कहाँ यह खद्दर का कुर्त्ता-धोती!"[32] **'आरोहण'** कहानी में पहाड़ी अंचल का वर्णन हुआ है। कथानायक जब अपने मित्र शेखर कपूर के साथ पहाड़ी क्षेत्र में बसे अपने गाँव जाता है तो रास्ते में घुड़सवारी वाला बच्चा परिवेश के अनुसार पहाड़ी पतलून सलेटी स्वेटर पहने हुए है।

'सावधान! नीचे आग है' उपन्यास में ऊधमसिंह जब अप्रेंटिस की ट्रेनिंग के लिए चंदनपुर कोलियरी आता है तो वह अतनू बाबू के पास जाने का पता लोगों से पूछता है। इसी क्रम में जिन लोगों से उसकी मुलाकात होती है उसमें कोई मैला-कुचैला हाफ पैंट, बटन-टूटी शर्ट पहने कमजोर-सा युवक होता है तो कुछ राजस्थानी औरतें भी वहाँ उस क्षेत्र में रहती हैं जिनमें कुछ के पहनावे घुटनों तक झूलते घाघरा और कुर्ती, पाँवों में मोटे छड़े, हाथ में कड़े। इस प्रकार संजीव के पूरे कथा-साहित्य में पात्रानुकूल वेश-भूषा का प्रयोग हुआ है।

रीति-रिवाज

भारत में विभिन्न धर्म और जाति के लोग रहते हैं और उनमें सदियों से पीढ़ी दर पीढ़ी अलग-अलग रस्म-रिवाज चले आ रहे हैं। ये पारंपरिक प्रथायें और रिवाजें हमारी सांस्कृतिक धरोहर हैं। इन्हीं के वजह से हमारी संस्कृति जीवित है। हमारे यहाँ बच्चे के जन्म से लेकर उसके स्कूल जाने, शादी-ब्याह तक में विभिन्न प्रकार के रीति-रिवाज का पालन किया जाता है। बच्चे के जन्म के समय सोहर गाया जाता है तो विवाह के समय मंगल गीत। संजीव ने अपने उपन्यास **'सूत्रधार'** में भिखारी ठाकुर के स्कूल जाने के समय होने वाले 'खली छुलाई' रस्म का बड़ा ही मनोरम वर्णन किया है –"नन्हीं अंजुरी में अक्षत भरा गया, ऊपर एक भेली गुड़, हल्दी की एक गाँठ, खोसी गई हरियर दूब, एक तांबे का पैसा।...बोलो रामगति देहुँ सुमति! *'राम गति देहुँ सुमति!'* कह कर मारकीन के टटके अँगोछे में उलट दिया गया और वह सब अँगोछे में बाँधकर लड़कों के साथ गुरु जी के पास भेज दिया गया।"[33] आज भी यह

---

32. *संजीव, 'मानपत्र', संजीव की कथा यात्रा दूसरा पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 410*

33. *संजीव, 'सूत्रधार', पहला संस्करण : 2004, पहली आवृत्ति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 16*

परंपरा थोड़े हेर-फेर के साथ भारतीय समाज में जारी है। हमारे यहाँ शादी ब्याहों में 'गारी' गाने की प्रथा है, 'डोमकच' और 'जलुआ' की परंपरा है, तो नाइन के द्वारा होने वाली नह-छुआई, कलशा, गोड़ भराई आदि कितनी रस्में हैं। वहीं कुछ हृदय विदारक रस्में भी थी जिससे बहुत हद तक मुक्ति मिली है। विधवाओं का सर मुंडन करवाने का रिवाज था। भिखारी ठाकुर जब धनी सिंह की विधवा का मुंडन करने पहुँचते हैं तो वह भोंकार मार कर रोती है। उसके लंबे-लंबे काले बालों को छील-छीलकर गिराते समय भिखारी ठाकुर का कलेजा मुँह को आता है।

'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में डाकुओं के बीच 'आत्मशुद्धी' के लिए 'लखराँव' का रिवाज है। मुरली पांड़े लखराँव के बारे में बताते हुए कहते हैं –"किसी महीने की कृष्णा चतुर्दशी को प्रदोष काल के पश्चात ही यह अनुष्ठान आरंभ करें। इसमें भगवान शिव का विधिवत् पूजन किया जाता है। एक लाख पुष्प या एक लाख बेलपत्र 'ॐ नमः शिवाय' के साथ प्रत्येक बार अर्पित करें। ...इस व्रत से गोहत्या, ब्रह्महत्या, गुरु या पर-स्त्रीगमन, मद्यपान आदि महापातकों का नाश होता है।"[34] मुरली पांड़े के माध्यम से कथाकार का व्यंग्य है कि यहाँ डाकू धर्म को लांड्री समझते हैं जहाँ वे अपनी मैली चुनर को धोना चाहते हैं और फिर जब सारा पाप धुल जायेगा तो नये सिरे से पाप करने की आजादी मिल जायेगी।

'हिमरेखा' कहानी में पहाड़ी अंचल जौनसार में प्रचलित बहुपति प्रथा का वर्णन है। इसी प्रथा के कारण कथानायक को अपने से उम्र में बड़ी भाभी को अपनी पत्नी स्वीकार करना पड़ता है क्योंकि यहाँ का रिवाज है कि परिवार में भाई चाहे जितने भी हों, विवाह सिर्फ बड़े भाई का होगा और बाकी भाइयों को, भाभी को ही अपनी पत्नी स्वीकार कर लेना होगा। जमीन की तंगी, आर्थिक बदहाली और मैदानी इलाकों में व्याप्त अनैतिक संबंधों का हवाला देकर कौशिला देवी इस प्रथा को सही साबित करती हैं।

'फैसला' कहानी में मुस्लिम पर्सनल लॉ के नाम पर कठमुल्लों ने कुरान शरीफ की

---

34. संजीव, 'जंगल जहाँ शुरू होता है', पहला संस्करण : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 143

तलाक संबंधी हिदायतों को तोड़-मरोड़ कर इसे स्त्री विरोधी रिवाज के रूप में परिणित कर दिया है। लेखक ने इसे मर्दों की चालाकी करार दिया है, जहाँ सिर्फ तीन बार तलाक कहकर वह स्त्री और परिवार के प्रति अपनी जिम्मेदारी से मुक्त होकर फिर से बेलगाम और अराजक होने के लिए स्वतंत्र हो जाता है। कथाकार ने ऐसे रिवाज का विरोध किया है। खैर अब हमारे देश में तीन तलाक के विरुद्ध कानून भी बन गया है।

जाति पंचायत/खाप पंचायत

भारतवर्ष अनेक प्रदेशों को समेटे हुए एक वृहत देश है। यहाँ के प्रत्येक प्रदेश की अपनी-अपनी संस्कृति, रस्म-रिवाज, परंपरा इत्यादि हैं। तो इनसे उपजने वाली कुछ सामाजिक समस्याएँ भी हैं। इन समस्याओं के समुचित और न्यायसंगत निपटान के लिए ही पंचायतें बनीं। मुंशी प्रेमचंद ने भी अपनी कहानी **'पंच परमेश्वर'** में पंच को न्याय और ईश्वर का प्रर्याय माना है। एक गोत्र या बिरादरी के सभी गोत्र मिलकर इस जाति पंचायत का निर्माण करते हैं। इनमें दो-चार गाँव भी शामिल हो सकते हैं और बीस-पच्चीस गाँव भी। इनका काम होता है गाँव की विभिन्न समस्याओं का न्यायसंगत समाधान ढूँढ़ना। भारतवर्ष में पिछले कई वर्षों से इस प्रकार की खाप पंचायते काम कर रही हैं। मुख्यतः हरियाणा, उत्तरप्रदेश, राजस्थान में ये अधिक सक्रिय हैं। इन्हें कानूनी वैधता प्राप्त नहीं है। फिर भी गाँवों में घटी किसी घटना को लेकर ये कानून से ऊपर उठकर फैसला देती हैं। कई बार इनके फैसले जानलेवा होते हैं। इसलिए इस प्रकार के गैरकानूनी खाप पंचायतों का अब विरोध हो रहा है क्योंकि जाति, धर्म, शिक्षा, विवाह, रस्म, परंपरा, तलाक के नाम पर ये पंचायतें मनमाना निर्णय दे रही हैं। आज हमारे देश में किसी भी मामले में निपटान हेतु जिला न्यायालय से लेकर सुप्रीम कोर्ट तक उपलब्ध और सक्षम हैं।

संजीव ने **'हिमरेखा'** कहानी में इन्हीं खाप पंचायतों के अमानवीय और जबरदस्ती थोपे गए निर्णयों पर प्रहार किया है जो कथानायक के प्राण तक ले लेती है। कथानायक कपिल एक पहाड़ी युवक है और उसके यहाँ यह परंपरा है कि चाहे वे कितने भी भाई क्यों न हों, विवाह सिर्फ बड़े भाई की होगी और बाकी भाई अपनी भाभी को ही पत्नी मान लेंगे। यद्यपि कपिल

शहर में रहकर पढ़ता है और शहरी संस्कार ग्रहण करता है, गाँव में जाकर पुरानी रूढ़ियों का विरोध करता है। वह अपने से बड़ी भाभी को अपनी पत्नी स्वीकारने को तैयार नहीं होता है, जिसके लिए पंचायत बैठ जाती है –"पंचायत जुटत-जुटाते तीसरा पहर हो आया। जोशी जी, जीवन सिंह और रावत लोगों का परिवार एक साथ बैठा आपस में खुसुर-फुसुर कर रहा था, बाजगी लोगों के नौ सदस्य उनसे कुछ दूर हटकर, और सबसे परे कोलटा लोग। नौतपुर की पचहत्तर साल की वृद्धा कौशिला को पकड़कर ला रहे हैं अनिल और रामसिंह। ...रीति-रिवाजों, देवी-देवताओं का उनसे बड़ा जानकार कोई है भला! और हो भी कैसे? कौशिला ने पांच शादियाँ कर पाँच घर बसाए और हर बार उसकी कीमत ऊँची होती गई।"[35] पंच जीवन सिंह जब अपने तीन पुत्रों के लिए एक पुत्रवधु का हवाला देते हैं। तो कपिल उसे घोर पिछड़ापन करार देता है। पंच जब अपने आप को पांडवों का वंशज घोषित कर द्रोपदी की परंपरा की रक्षा की बात करते हैं तो कपिल इन पौराणिक कथाओं को भी कोरा गप्प करार देता है, परंतु कौशिला देवी के इस तर्क के आगे कपिल हार जाता है कि पहाड़ों पर जमीन की कमी को देखते हुए तीन बेटों के लिए एक बहू का प्रावाधान है ताकि जमीनें तीनों बेटों में बँट न जायें। वे आगे भी तर्क देती हैं कि जमीनों के बँटने से बचाने के लिए शहरी लोग भी चादर डालकर, जूता रखकर दूसरी की पत्नी को स्वीकारते हैं। अंततः पंचायत का निर्णय मानकर कपिल को अपनी भाभी को पत्नी स्वीकारना पड़ता है परंतु इस निर्णय को वह मन से स्वीकार नहीं कर पाता है और आत्महत्या कर लेता है।

उनकी कहानी **'लाज-लिहाज'** में तो खाप पंचायतों का रौद्र रूप देखने को मिलता है। जहाँ एक लड़की को गैर-बिरादरी के लड़के से प्रेम करने और भागने के जूर्म में खाप पंचायत बहुत ही खौफनाक निर्णय लेती है –"साब, आप हमारी बिरादरी की पंचायत को नहीं जाणते। अजी कौन सा हाई और कौन सा सुपरीम कोरट! सबका बाप! तीण साल पैले ऐसाई वाकया हुआ था। लोग समझा-सुमझा के हार गये। लड़की ना मानी तो ना ही मानी। तब पंचों ने ऐसेई

---

35. संजीव, 'हिमरेखा', संजीव की कथा यात्रा दूसरा पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 375

ठण्डेपन से पूछा था, 'बड़ी मस्ती चढ़ी है तेरे पे ज्वाणी की?' उस मस्ती को तोड़ने के लिए पाँचों पंच चढ़ गये उस पे बारी-बारी। 'पाले पोसे हम, भोग लगाए दूसरा...? फिर दूसरा हो तो हम क्यों नहीं?"[36] वास्तव में हरियाणा में ये खाप पंचायतें कुछ ज्यादा ही सक्रिय हैं। कहानी में कथाकार की बहन जग्गा नामक एक लड़के से प्रेम करती है जो चुहड़ जाति का है, वह उससे विवाह करना चाहती है, परंतु जाति-बिरादरी सहित उसके स्वयं के भी भाई इसे अपनी मान-मर्यादा का उल्लंघन मानते हैं और पंचायत का फैसला स्वीकार कर लेते हैं जिनमें उनकी बहन को साठ वर्ष के अपनी जाति के वृद्ध को सौंप दिया जाता है –"बैण के दोणों हाथ सामणे की ओर बाँध दिये गयेह थे और वो उसका नया मरद उसके पीछे-पीछे लगा था जैसे हाँकते हुए जा रहा हो। बाकी लोग उसके पीछे-पीछे। भौत रोई थी बैण उस दिन, भौत!"[37] अतः यह सिद्ध होता है कि पंचायतों में भी जातिवादी रूढ़िवादिता कूट-कूट कर भरी हुई है अतः उनके निर्णय को ईश्वरतुल्य नहीं समझा जा सकता है।

'फैसला' कहानी में अहमद गुस्से में आकर अपनी पत्नी मुसन्नी को तलाक तलाक तलाक कह देता है, परंतु गुस्सा शांत होने पर उसे अपनी गलती का अहसास होता है। वह इस बात को यहीं छुपा लेना चाहता है परंतु शमशुद्दीन नामक एक व्यक्ति सुनकर इस बात को मुस्लिम समाज में फैला देता है। अहमद और उसकी पत्नी साथ रहना चाहते हैं परंतु मुस्लिम पर्सनल लॉ उन्हें साथ रहने की इजाज़त नहीं देता है। पंचायत बैठती है और यह निर्णय लिया जाता है –"अब वो जाने और उसका ईमान जाने। उसने तीन बार तलाक कहा, तलाक तो हो गया, इस बात का गवाह भी है और उसने खुद ही कबूल किया। अब तो तलाक-उल-विद्दत और इद्दत की मुद्दत के तीन महीने तेरह दिन के बाद ही वह तलाकशुदा औरत किसी से शादी करके हलाला बने और जो शख्स उसे फिर से तलाक दे, तभी वे दोनों चाहें तो फिर से ...अब

---

36. संजीव, 'लाज-लिहाज', (झूठी है तेतरी ददी), प्रथम संस्करण : 2012, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 26

37. वही, पृष्ठ संख्या – 27

अफसोस करके क्या होगा?"[38] अतः मुस्लिम पर्सनल लॉ के नाम पर गैर कानूनी तीन तलाक के प्रावधान ने अहमद और उसकी पत्नी के खुशहाल जिंदगी को नरक बना दिया। खैर अब हमारे देश से इस *'तीन तलाक'* को कानून बनाकर समाप्त कर दिया गया है।

'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में फेंकन दुसाध सुन्नर पांड़े का हलवाही करता है। फेंकन की सुशिक्षित, टाटा शहर में पली-बढ़ी पत्नी उन्हीं के घर में चौका-बर्तन का बेगारी करती है। फेंकन बहू द्वारा बर्तन छू देने पर पंडाइन हो-हल्ला मचा देती हैं। दूसरी बार जब वह फेंकन बहू को अपना हाथ-पाँव दबाने को कहती हैं तो फेंकन बहू उन्हें अस्पृश्यता का हवाला देकर इन्कार कर जाती है। इस बात को पंडाइन अपनी अवहेलना और अपमान समझती हैं तथा अपने पति के साथ मिलकर अपने भाई के द्वारा फेंकन बहू का बलात्कार करवाती हैं। फेंकन अपनी पत्नी के साथ हुए इस अन्याय का इन्साफ बाबाजी लोग से माँगता है –"पंचायत भी बैठी थी, पंचायत ने एक स्वर से यह फैसला दिया कि 'पांड़े या उनके साले ऊँची जात के आदमी फेंकन बहू जैसी नीच जाति के साथ यह कर्म कर ही नहीं सकते।"[39] अतः इस प्रकार की जाति पंचायतें हमेशा सवर्ण समाज के पक्ष में ही निर्णय देती हैं, छोटी जातियों, हरवाहों, मजदूरों को इन्साफ कहीं नहीं मिलता। अपने आप को गरीबों, शोषितों, पीड़ितों का हिमायती कहने वाले डाकू भी फेंकन को यह कहकर लौटा देते हैं कि वे दूसाधों, चमारों, धोबियों इत्यादि छोटी जातियों का केस नहीं लेते हैं। अतः इस प्रकार के खाप पंचायतों से इन्साफ की गुंजाइश बिल्कुल नहीं है।

अंचल की माटी से उपजी अदम्य साहसी, स्वाभिमानी, संघर्षशील और विद्रोही नारी मैना संजीव के अगले उपन्यास **'धार'** की नायिका है। उसके विचार क्रांतिकारी हैं, परंतु अपने संथाली भाई-बहनों के लिए उसमें अकाट्य सेवाभाव है। तभी तो उनकी बेहतरी के लिए वह

---

38. संजीव, 'फैसला', संजीव की कथा यात्रा दूसरा पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 388-389

39. संजीव, 'जंगल जहाँ शुरू होता है', पहला संस्करण : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 92

व्यवस्था से टकरा जाती है। पूँजीपति महेंद्र बाबू के तेजाब फैक्ट्री का विरोध करती है। आदिवासियों के जीवन में जहर घोलती उस फैक्ट्री के विरोध में वह अपने पिता और पति से भी लड़ती है। पति की परित्यक्ता बनती है। फैक्ट्री के विरोध के कारण पूंजीपति उसे जेल भेज देते हैं। जेल में पुलिस द्वारा यौन शोषण का शिकार होती है और जेल से आते समय जेल में जन्में अपने बच्चे और एक कैदी मंगर के साथ लौटती है। पति के होते हुए भी वह मंगर को अपना पति मानकर उसके साथ रहती है। तब संथाल जाति की जाति पंचायत लॉबीर जुटती है और सभा का सर्व-सम्मत निर्णय मोड़ल सुनाते हैं–"फोकल किस्कू, टेंगर टुडू और जिन सौंतालों ने लॉबीर की उपेक्षा कर बिना हमारी राय लिये मैना का श्राद्ध किया है, उन्हें लॉबीर इसी दम से जातिच्युत करती है। मैना की मजबूरी को ध्यान में रखते हुए उसके कसूर माफ कर उसे पूर्नविवाह की इजाज़त देती है। मंगर को पहले विवाह के खर्च-स्वरूप सौ रुपये फोकल को देने होंगे। फोकल के जातिच्यूत होने के कारण फोकल और मैना से जन्मे बच्चे भी मैना के हुए।"[40]

आभूषण

आदिकाल से ही मनुष्य प्रकृति द्वारा प्रदत्त अपने मूल सौंदर्य से संतुष्ट नहीं रहा है। वह अपने मूल सौंदर्य में वृद्धि अथवा सौंदर्य सृष्टि के लिए विभिन्न नैसर्गिक क्रिया-कलाप करता रहा है। अतः प्रारंभिक अवस्था में वे पत्थरों, हड्डियों, धातुओं, फूल आदि का उपयोग आभूषण के रूप में करते थे। कालांतर में राजा-महाराजा भी सोने-चाँदी के आभूषण धारण करते थे। अतः आभूषण हमारी लोक-संस्कृति का अंग बन गई। भारतीय नारी सोने के आभूषण के प्रति कुछ ज्यादा ही आसक्त रहती हैं। यह सिर्फ इनकी बाहरी चमक-दमक को ही नहीं बढ़ाता बल्कि इनके आंतरिक चित को भी प्रफूल्लित कर देता है। कुछ लोग इन आभूषणों को धारण करने का वैज्ञानिक कारण भी बताते हैं जैसे कि पायल और कड़े पहनने से एड़ी, टखने और पीठ के नीचले भाग में दर्द नहीं होता। जबकि ज्योतिष विद्या के अनुसार विभिन्न प्रकार के पत्थरों तथा धातुओं को आभूषण के रूप में धारण करने से विभिन्न ग्रहों और नक्षत्रों के

---

40. संजीव, 'धार', पहला संस्करण : 2018, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 53

दुष्प्रभाव से बचा जा सकता है। खैर, इसका मूल कार्य आज भी सौंदर्य वृद्धि ही है। आजकल तो सौंदर्य वृद्धि को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न प्रकार की प्रतियोगिताएँ, फैशन शो, ब्यूटी पार्लर इत्यादि हैं। क्योंकि मनुष्य की नजर हमेशा सुंदर ही देखना चाहती है और आभूषण उस सुंदरता में चार चाँद लगाता है। संजीव के कथा साहित्य में आभूषणप्रियता परिलक्षित होती है। **'सावधान! नीचे आग है'** उपन्यास में कुछ राजस्थानी महिलायें हाथों में चाँदी के कड़ा और पाँवों में छड़ा पहने हुए हैं। **'जंगल जहाँ शुरू होता है'** उपन्यास में डाकू काली की फूफेरी बहन मलारी के रूप सौंदर्य पर आकर्षित होकर जब डॉ. कुमार रात के समय उससे मिलने पहुँचते हैं तो वह सुंदर परिधान में, माथे पर मयूरी हरेपन की बिंदी लगाये, गले में चाँदी की सिकड़ी पहने हुए सोये मिलती है। **'पाँव तले की दूब'** उपन्यासिका में घर जाते समय आदिवासी युवतियाँ अपने बालों में चाँदी की लड़ियाँ लगाये हुए हैं। मेले में उनके आकर्षण का प्रमुख केंद्र भी ृंगारिक प्रसाधन की दुकाने हैं। **'धार'** उपन्यास में संथाली आदिवासी स्त्रियाँ अपनी बाहों पर चाँदी का बाजूबंद एवं जूड़े में चाँदी के नन्हें घुँघरूओं की लड़ियाँ पहनती हैं। **'सर्कस'** उपन्यास में दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए कलाकार अपना ृंगार करते हैं –"ब्यूटी पार्लर, मालिश, बालों का डिजाइन, योगा के बीच से एक नई रेखा उभर रही थी। आज वह एक दूसरी नुमाईश में छील, तराश, सजा-सँवारकर खुद को लिए फिर रही थी दुनिया के बाज़ार में-किसी निर्भरशील पुरुष का वरण करने को तत्पर?"[41] इस प्रकार संजीव के कथा साहित्य में आभूषणों का चित्रण देखने को मिलता है।

लोक-संस्कृति

किसी अंचल विशेष में स्थित लोगों की संपूर्ण जीवन प्रणाली खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार, दैनिक क्रिया-कलाप इत्यादि को आंचलिक संस्कृति कहा जा सकता है। अंचलों में चलायमान लोकगीत, लोक-नृत्य, लोकभाषा, लोक-संगीत, लोकनाटक, त्योहार इत्यादि लोक संस्कृति को समृद्ध करते हैं। अभिजात्य संस्कृति की कृत्रिमता से दूर, जीवन

---

41. संजीव, 'सर्कस', पहला संस्करण : 2004, पहली आवृत्ति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 148

इसमें सरल रूप में प्रवाहमान है। भारतीय लोकसंस्कृतियाँ अपना एक अलग महत्व लिए पूरे विश्व में जानी-पहचानी जाती हैं। संजीव के कथा-साहित्य में इन लोक-संस्कृतियों का चित्रण देखने को मिलता है।

'हिमरेखा' कहानी के अंदर पहाड़ी लोगों का रहन-सहन, परंपरा सब शहरी जीवन से अलग है। वे पहाड़ के सबसे ऊँचे भाग पर स्थित सबसे अंतिम गाँव में रहते हैं और अपने-आप को पांडवों का वंशज समझते हैं –"और फिर हम ठहरे पाण्डवों के वंश के! एक द्रौपदी पाँच पति! कुंती माता का हुकुम – बराबर-बराबर बाँट लो। लेकिन द्रौपदी से ज़रा-सी चूक, अर्जुन को औरों से ज्यादा माना, नेह को बराबर-बराबर न बाँट पाई, इसलिए तो गल गई बेचारी जाते समय। वो देखो, पहाड़ों के पार स्वर्गारोहिणी है, उसी जगह।"[42] और इस प्रकार इनके समाज में बहूपति प्रथा प्रचलित है और सीमित ऊपज और सीमित संसाधन के बीच भी वह बहुत ही साधारण, सरल, छल-कपट रहित स्वच्छ जीवन व्यतीत करते हैं।

'मानपत्र' कहानी तो हमारी सांस्कृतिक एकता की मिशाल है जहाँ एक मुस्लिम उस्ताद वागेश्वरी को किसी धर्म का नहीं अपितु फन का देवी मानकर पूजते हैं। उन्हें इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि मुस्लिम समाज उन्हें काफ़िर माने या उन पर कोई फतवा जारी करे। वे अपनी पुत्री आयशा को भी वीणा की विद्या में निपुण बनाते हैं। वे इस कला को सिर्फ मौसिकी तक ही सीमित रखना चाहते हैं, धर्म के आएँबरों से बाहर। इस प्रकार ये सांस्कृतिक मेल-बंधन हमारी पहचान हैं।

लोककथा

लोककथाओं में हमारी परंपरा, संस्कृति, आरंभिक जीवन शैली, रहन-सहन, रस्म-रिवाज बसते हैं। उपरोक्त विशेषताएँ श्रुति माध्यम के रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के लोकमानस में स्थानांतरित होती हुई हमारी सांस्कृतिक विरासत है। ये लोककथाएँ इतनी रोचक और आनंददायक हैं कि आज विज्ञान के युग में भी इनके प्रचलन की चमक फिकी नहीं पड़ी

---

42. संजीव, 'हिमरेखा', संजीव की कथा यात्रा दूसरा पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 376-377

है। यद्यपि श्रुति माध्यम में होने के कारण इन लोक-कथाओं में बहुत-सी अवांतर कथाएँ जुटती या छूटती जाती हैं। इनकी प्रमाणिकता हमेशा संदिग्ध रहती है फिर भी लोकमानस के लोककंठ से प्रवाहित होती यह अविरल गंगा के समान प्रवाहमान है, यह आज भी लोकमानस के परंपरा और विश्वास को वहन करती हुई उनमें आनंद का संचार करने का माद्दा रखती है। संजीव के कथा साहित्य में इस प्रकार के लोककथाओं की भरमार है। इनकी कहानी **'जीवन के पार'** में मानसिंह और बामई की प्रेम कथा है जहाँ मानसिंह अपने काल्पनिक बच्चों को **'सरहूल की कथा', 'फूलों के उत्सव सरना की कथा'**, तथा पहाड़, नदी, झरना से जूड़ी कहानियाँ सुनाता है। वह असूरों और 'हो' लोगों की लड़ाई का लोककथा विस्तार से सुनाता है –"अब सिंबोंगा ठहरे जगत के पालनहार। मगर असुर लोगों को अपनी बुद्धि पर घमंड था, वे उन्हें क्यों मानने लगे। असुरों के पास थी बड़ी अक्ल जादू-टोना। वे लोहा गलाते थे, लोहा माने छूरी, माने टांगी। सो लोहा गलाने के लिए ढेर आग, ढेर गरमी की जरूरत होती, उसकी तपन से जीव-जंतु, खेती, पेड़-रूख सब झुलसने लगे ...सिंबोंगा ने फिर धारण किया खुजली वाले लड़के का रूप – देवा का लड़का। यह लड़का असुरों के गांव में घूमता रहा, मगर किसी ने भी उसे आश्रय न दिया। उसी गांव में एक बूढ़ा-बूढी थे ...उन्होंने ही देवा के उस बच्चे को अपने बेटे की तरह रखा ...अब तो तरह-तरह के अनहोनी करके दिखलाने लगा वह लड़का। धान कुटाई हो रही थी, उसने धान से उतना ही चावल निकालकर सबको चकित कर दिया ...फिर इसने ओझाई शुरू की, जिस किसी को हारी-बीमारी, रोग-सोक होता, लड़के के पास आता। रोता हुआ आता और हँसते हुए जाता ...उसने धान की खेती को बढ़ावा दी। असुर फिर भी जस के तस। उन्होंने लड़के की बली दे डाली लेकिन लड़का जिंदा निकल आया।...सिंबोंगा बोले तुम लोग धरती के दूसरे जीवों की तरह अपना भरण-पोषण करो, देवा के लड़के की तरह सिंबोंगा की पूजा करो, सरसो और धान को पैरों से छुड़ाओ ...इस तरह कोई देवी-देवता तुम्हारा नुकसान नहीं करेगा, कोई हारी-बीमारी नहीं होगी और किसी को भी दुष्टात्मा नहीं पकड़ेगी।"[43]

---

43. संजीव, 'जीवन के पार', संजीव की कथा यात्रा तीसरा पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 131-132

'दुनिया की सबसे हसीन औरत' कहानी के अंदर ओराँव महिलाओं के चेहरे पर गुदे तीन गोदनों के पीछे की लोककथा सुनाते हुए कथा का नायक आदिवासी महिलाओं के अंदर आत्मविश्वास और बहादुरी का संचार करना चाहता है। कथानायक ट्रेन में सब्जीवाली आदिवासी महिला को उसके चेहरे पर गुदे तीन गोदना का महत्व बताता है –"रानी सिनगीदई और सेनापति की बेटी कैली दई की चिंता, मुगलों का हमला और मर्द सरहुल के पर्व के नशे में उठाए उठे नहीं, जगाए जगे नहीं। औरतों का मर्दाना पोशाक पहनकर मोर्चा सम्भालना, तीनों हमलों में मुगलों को शिकस्त देना, गद्दार सुंदरी के चलते भेद खुल जाना, चौथा हमला, रानी का किला छोड़ना, लड़ती हुई कुछ बहादुर औरतों का पकड़ा जाना, तीन शिकस्त का बदला चेहरे पर तीन बार दाग कर लेना और फिर उन दागों को कलंक न मानकर सभी ओराँव औरतों द्वारा ृंगार के रूप में अपना लिया जाना।"[44] अर्थात कथाकार ने लोककथा के माध्यम से यह स्पष्ट संकेत दे दिया है कि हर जगह विजय ही वीरता का सूचक नहीं होती। कहीं-कहीं हार भी वीरता का ृंगार करती है। उन्होंने अपनी कहानी **'खोज'** में सगुनियों की खोजी प्रवृत्ति का वर्णन किया है। इन सगुनियों के बारे में भी बहत सी लोककथाएँ प्रचलित हैं –"सगुनियों के बारे में कहा जाता है कि दुनिया में ऐसी चीज नहीं, जिसे वे खोजने की ठान लें और न खोज निकालें। कब बाढ़ आएगी, कब सूखा, कब महामारी आएगी, कब अकाल, आकाश मार्ग से कौन-सी प्रेतात्मा जा रही है और धरती के किस चप्पे के नीचे कौन-सा रत्न छिपा है, वे चाहें तो पल भर में बता सकते हैं। इसके लिए वकायदा सिद्धि अनुष्ठान होता। वे किसी विशेष देवी-देवता के पुजारी हैं। खोज के पहले वे उपवास रखते हैं, फिर परमवृक्ष की डाल लाकर पूजा करते हैं। इस डाल को चलने पर डाल की पत्तियाँ जहाँ खिलकर ताकने लगे वहीं रुक जाते हैं, फिर बताते हैं –इसके नीचे खारा पानी है, इसके नीचे मीठा पानी, यहाँ सोना है, यहाँ चाँदी, यहाँ जवाहरात। पत्तियों की भाषा को उनके सिवा कोई दूसरा नहीं पढ़ सकता। बहुतों ने जानना चाहा, मगर अपने खानदान के सिवा वे यह विद्या किसी को नहीं बताते। कहते हैं,

44. *संजीव, 'दुनिया की सबसे हसीन औरत', दूसरा संस्करण : 2004, दूसरा आवृत्ति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 41*

कौशलेंद्र के खजाने में जो रत्न थे उसमें से अधिसंख्यक का श्रेय सगुनियों को ही जाता है।"[45]

'सूत्रधार' उपन्यास में लोकनायक भिखारी ठाकुर के दूर के समधी बाबूलाल उनको सुंदरी बाई और दुनिया बाई नामक दो इरानी बहनों के संबंध में प्रचलित लोककथा सुनाते हैं कि किस प्रकार एक ईरानी कलाकार परिवार मुगलों के साथ भारत आता है। दरबार में नाच-गाकर मनोरंजन करना इनका पेशा बनता है। अंग्रेजों का भारत पर आधिपत्य जमाने के बाद ये परिवार लखनऊ के नवाबों के महलों से होते हुए हथुआ महराज के दरबार में पहुँचता है। वहीं इसी परिवार की अगली पीढ़ी की दो बहनें सुंदरी बाई और दुनिया बाई पहला नाच दल गठित करती हैं। इस प्रकार इस लोककथा के माध्यम से बाबूलाल, भिखारी ठाकुर को नया नाच दल गठन करने के लिए प्रेरित करते हैं। **'जंगल जहाँ शुरू होता है'** उपन्यास में भी चंद्रगुप्त और चाणक्य की लोककथा है।

लोकगीत

भारतवर्ष विभिन्न सभ्यता, संस्कृति और बोलियों को समेटे एक वृहत्त देश है। यहाँ के बारे में कहावत है कि दो कोस चलने पर पानी का स्वाद बदल जाता है तथा एक कोस चलने पर वाणी का ढंग। अर्थात यहाँ पर भोजपुरी, ब्रज, अवधी, मगही, कुमाउँनी, मैथिली, बुंदेली, मारवाणी, सहित कई बोलियाँ बोली जाती हैं और इन्हीं बोलियों में रचे-गढ़े गए लोकगीत ही हमारी भारतीय संस्कृति की धरोहर हैं। वैदिक काल से लेकर आज तक मानवीय संवेदना, संस्कृति, पर्व-त्योहार, रस्म-रिवाज का संयोजन इन्हीं लोकगीतों से है। ये लोकगीत शास्त्रीय संगीत के समान नियमबद्ध नहीं होते हैं बल्कि इनमें सामान्य लोकव्यवहार, लोकभावना एवं लोकजीवन की सामयिक प्रस्तुति होती है। लोकगीतों का उपयोग साधारणतः हमारा ग्रामीण, अशिक्षित समाज मनोरंजन के लिए बिरहा, चैता, सोरठा, कजली, सोहर, फाग, पचरा, बारहमासा इत्यादि रूप में करता रहा है और यही लोकगीत श्रुति माध्यम के रूप में सदियों से

---

45. *संजीव, 'खोज', संजीव की कथा यात्रा तीसरा पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 157*

एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संचरित होती रही है। इन लोकगीतों में छिपी हमारी भारतीय संस्कृति इतनी सशक्त रही है कि सैकड़ों वर्षों के मुस्लिम और अंग्रेजी शासन भी उसकी जड़े नहीं हिला पाती है। प्रायः हर प्रदेश में प्रचलित आंचलिक भाषा में यह गाये जाते हैं। लोकगीतों में आम जनता की सामुहिक चेतना की पुकार मिलती है। जीवन की प्रत्येक अवस्था हर्ष-विषाद, आशा-निराशा, सुख-दुख, जीवन-मृत्यु की अभिव्यक्ति इन लोकगीतों के माध्यम से होती है। इसकी बोली छंद, लय, अत्यंत सरल, स्वाभाविक और मिठास से परिपूर्ण होती है। इसके प्रभावात्मक क्षमता का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि सदियों से ये श्रुति माध्यम के रूप में न सिर्फ जीवित हैं बल्कि हमारे संस्कारों को संवारती रही है। संस्कार गीत, श्रम गीत, त्योहार गीत, ऋतु गीत इत्यादि के रूप में ये हमारे जीवन में घुले-बसे हैं। आज आवश्यकता है इन लोकगीतों के संरक्षण की। हरियाणा के लोकगीतों के संरक्षण का कार्य वहाँ के साहित्यकारों ने शुरू कर दिया है। उसी प्रकार हमारे देश के विभिन्न लोकगीतों का संरक्षण आवश्यक है। ऐसा न हो कि आधुनिकता की इस तेज रफ्तार में हम अपनी संस्कृति से ही हाथ धो बैठें।

संजीव के कथा-साहित्य में लोकगीतों की भरमार है। सामुहिक नृत्य गीत, मांझी के गीत, बारहमासा, त्योहार के गीत, मेले के गीत, पारंपरिक छठ गीत आदि का चित्रण संजीव के कथा-साहित्य में मिलता है।

'आरोहण' कहानी में नारी कंठ से दर्दीले स्वर में एक पहाड़ी गीत उभरता है। वह अपने गीत के माध्यम से कोहरे को उन ऊँची-नीची पहाड़ियों में जाने से मना करती है। वह हिलांस नाम के पक्षी को भी इन पहाड़ियों में अपना बसेरा बसाने पर अगाह करती है। बहुत ही प्रतीकात्मक वर्णन है। कथाकार पहाड़ को अपना बसेरा नहीं बनाता है। वह पहाड छोड़कर चला जाता है। पहाड़ के उन कुहरों में आपसी रिश्ते-नाते तक धुँधला जाते हैं –

"ऊँची-नीची डांडियो मा
हे कुहेड़ी ना लाग तूँऽऽऽ !
ऊँचे-नीचे पाँखों मा,

हे घसेरी ना जाय तूँऽऽऽ !
ऊंची-नीची डांडियों मा
हे हिलाँस ना बास तूँऽऽऽ !"[46]

'सागर सीमान्त' कहानी मछुआरों के जीवन की त्रासदी है। ये मछुआरे चाहे मुर्शीदाबाद की गंगा नदी में मछली पकड़ने जायें या सुंदरवन, के केओड़ाखाली के समुद्रों में। इनके पत्नियों के प्राण हमेशा लटके रहते हैं। कई बार मछुआरे समुद्री तूफान के भेंट चढ़ जाते हैं। इसीलिए तो गंगा नदी में मछुआरों के मछली पकड़ने जाने पर उनकी पत्नियाँ माँ गंगा से प्रार्थना करती है कि उन्होंने अपने प्राणों के कमल उनकी लहरों पर तैरा दिया है। आप इन्हें जतन से अपने सीने से लगाये रखियेगा, माँ इन्हें आशा की लहरों पर झुलाती रहना...।

"गंगा-गंगार तरंगे प्रॉण-पद्म भासाइलॉम रे
मागो राखिओ जतने बुके निया
मागो दुलाओ आशार ढेउ दिया रे-रे
हे-हे-हे !"[47]

कहानी की नायिका नसीबन इसी समुद्र में अपने पति करीम को खो देती है। उसका पुत्र भी बड़ा होकर जब समुद्र में उतरने का जिद करता है तो वह उसे बहुत रोकती है, पर वह नहीं मानता है तो फिर एक बार उपरोक्त प्रार्थना नसीबन के मुँह से फुट पड़ती है।

'सूत्रधार' उपन्यास लोक-कलाकार भिखारी ठाकुर का जीवनीपरक उपन्यास है। इसमें लोक जीवन के विभिन्न रूप-रंगों, शादी-विवाह, धार्मिक संस्कार, बारहमासा एवं कुसंस्कारों के खिलाफ चेतना के गीत भी हैं। इनके कुछ प्रमुख लोकगीतों में विदेशिया, बेटी वियोग,

---

46. *संजीव, 'आरोहण', संजीव की कथा यात्रा दूसरा पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 308-309*

47. *संजीव, 'सागर सीमान्त', संजीव की कथा यात्रा दूसरा पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 196*

गबरघिचोर, बहराबहार, विधवा विलाप इत्यादि हैं। वास्तव में ये सारे नाटक हैं, जिन्हें मंच पर मंचित किया जाता है और उन्हीं में जूड़ा है समसामयिक समस्याओं को उठाते ये लोकगीत। गाँव में गरीबी से तंग आकर पुरुष कलकत्ता कमाने चले जाते थें और पिछे छोड़ जाते थें अपनी रोती-बिलखती पत्नी को। ऐसी स्थिति में इन पत्नियों के विरह को भिखारी ठाकुर ने विदेशिया के माध्यम से उठाया –

"कइसे के कहीं हम, नइखे धरात दम
सरिसों फुलात बाटे आँखि में बटोहिया
साँवली सुरतिया सालत बाटे छतिया में
एको नहिं पतिया पठउल-अ बलमुवा।"[48]

विदेशिया लोकगीत में कलकत्ता, कोइलरी, असम में मजदूरी कर रहे प्रवासी लोगों को अपना दर्द दिखा। और अंततः इस नाम पर फिल्म भी बनी। गाँवों में अनमेल विवाह नामक एक और कुप्रथा समाज को शर्मशार कर रही थी। बहुत से पिता दहेज के अभाव में, या वर पक्ष से ही कुछ रुपया लेकर अपनी पुत्रियों का विवाह वृद्ध वर से करा दे रहे थें। ये प्रथाएँ समाज के उच्चवर्णों में अधिक थीं। जोखिम को समझते हुए भी भिखारी ठाकुर की कलम इस समस्या पर चली और जन्म हुआ नाटक **'बेटी वियोग'** का। इस नाटक का सवर्ण समाज द्वारा पूरजोर विरोध हुआ। वे रातों रात लोटी-लोटा लेकर भागने को बाध्य हुए। परंतु वे हार नहीं माने और बेटियों के पक्ष में ये नाटक खेलते रहें। बेटी विदा लेते समय विलाप करती है-

"रोपेया गिनाई लिहल-अ, पगहा धराइ दिहल-अ
चेरिया के छेरिया बनवल-अ, हो बाबू जी!
गिरजा कुमार कर-अ दुखवा हमार पार-अ
ढर-ढर-ढरकत बा लोर मोर हो बाबू जी!
... ...

48. संजीव, 'सूत्रधार', पहला संस्करण : 2004, पहली आवृत्ति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 78

वर खोजे चलि गइल-अ माल लेके घरे धइल-अ

बाबा लेखा खोजला दुलहवा हो बाबू जी!"[49]

इस नाटक का समाज पर प्रभाव ऐसा पड़ा कि कई बेटियों ने वृद्ध वर से विवाह करने से इन्कार कर दिया तथा कुछ जगहों पर ग्रामवासियों ने ही इस प्रकार के अनमेल विवाह का विरोध किया। इसके अलावा भी पिया निसइलन, नाई बहार आदि लोक नाटकों के माध्यम से गाँव-ज्वार की समस्या को पूरे देश में घुम-घुम कर उठाते रहें।

'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में थारू आदिवासियों के मेले में सहोदरा माई के दरबार में थारू बालाएँ लोकगीत पर नृत्य करती हैं। रंग-बिरंगी साड़ियों में सजी-धजी, सुंदरता से परिपूर्ण, किशोरियाँ, जवान सभी नंगे पाँव बिना किसी घुँघरू और साज के नृत्य करती हैं। फिर भी अत्यंत प्रभावशाली है उनका झमटा –

"के जइहें हाजीपुर, के जइहें पटना,

से के जइहें...

अरे के जइहें अरे बेतिया नौकरिया

के जइहें...?"[50]

'धार' उपन्यास में जनखदान की शुरुआत मजदूर दिवस के दिन से की गई। इस अवसर पर मई दिवस पर प्रकाश डाला गया। कई कविताएँ प्रस्तुत की गईं। मैना ने जनखदान रूपी शिशु के अन्नप्राशन पर महिलाओं के साथ मिलकर संथाली लोकगीत गाया। सबसे अंत में जंगल संथाल का जागरण गीत नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत किया गया–

---

49. *संजीव, 'सूत्रधार', पहला संस्करण : 2004, पहली आवृत्ति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 102*

50. *संजीव, 'जंगल जहाँ शुरू होता है', पहला संस्करण : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 17*

"दे वाहा बिरिट पे ए लगन लगन विरिट पे-ए
जापित रे दो आदो वोया वन वन ताहे ना
लुदनिदा पारो सेना मासली सेटा सेटेरे ना
नाउवा बेड़ा हिड़ी-झिरी कुवरे राका वेन
माझरा-माझरा रामकाताते आदो वनवन भूलोया
बुलकाते आदो वोया वन वन ताहे ना।"[51]

यह जागरण गीत आदिवासियों को समाज के मुख्य धारा में जूड़ने का आह्वान करता है। उन्हें अंधविश्वास, धोखे और नशे की खुमारी से बाहर निकलने को प्रेरित कर रहा है।

'आप यहाँ हैं' कहानी की नयिका आदिवासी हिंदिया अपने पुत्र के सुंदर भविष्य की कामना करती है। वह उसे अधिकारी के रूप में देखना चाहती है परंतु साथ-साथ यह भी चाहती है कि ऊँचे पदों पर जाकर भी वह अपने लोगों को न भूले। मानवता को न भूले और इसी कल्पना में वह एक आदिवासी लोकगीत गुनगुना उठती है –

"स्वरग राज केतिक सुंदर हमार लगिन
सोना से सिंगरलै, रूपा सजावारले,
भूख नखे, पियास नखे, ओहो रेऽऽऽ...
जोर नखे, जुलुम नखे, लड़ाई नखे, झगड़ो नखे, ओहोरेऽऽऽ !"[52]

लोकविश्वास

संजीव के कथा-साहित्य के मूल पात्र दलित आदिवासी, किसान, मजदूर, नारी इत्यादि हैं जिन्हें लगातार गरीबी, भूखमरी, शोषण, उत्पीड़न अर्थात अपने आस-पास पसरे नरक से

---

51. *संजीव, 'धार', पहला संस्करण : 2018, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 158*

52. *संजीव, 'आप यहाँ हैं', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 158*

जूझना पड़ता है। कथाकार उन्हें अपना लोग समझते हैं इसलिए उनके पास खड़ा रहने के लिए प्रतिबद्ध हैं। यही कारण है कि उनके कथा-साहित्य में लोकविश्वास और लोकरूढ़ियों की झलक देखने को मिलती है। ग्रामीण जन-जीवन से जुड़े उनके अधिकांशतः पात्रों में शिक्षा का अभाव है जिसके कारण उनमें अंधश्रद्धा एवं प्रचलित लोकविश्वास भरा हुआ है। उन्होंने अपनी कहानी 'महामारी' में दिखाया है कि किस प्रकार गाँव के लोगों में चेचक की महामारी फैलती थी लेकिन ग्रामीण लोग इसे देवी का प्रकोप समझते थे और मनौती मानने, छोहरी खिलाने और पचरा गाने को ही इसका निदान समझते थे। आर्थिक विपन्नता में छोहरी खिलाने के लिए वे भीख तक मांग लाते थे। कथानायक स्वयं यह स्वीकार करता है कि माता माई की असवारी से रक्षा के लिए विंध्यांचल की देवी की मनौती मानी गई जिसको पूरा करने में उनका सबसे उपजाऊ टेढ़िया खेत बंधक रखना पड़ा जिसे वे फिर कभी छुड़ा नहीं पाए। गुरुदिन और रंगई बहू अपनी मनौती पूरा करने के लिए छोहरी खिलाते हैं –"देवी की छोहरियाँ कितनी प्रसन्न होकर खेल और खा रही हैं। हमारी अंजुरी में जौ भर-भरकर लड़कियों के माथे पर और हमारी बाँहों पर सिंदूर का टीका देकर वह हमारे पाँव पड़ती जाती और हम उसके फैलाए आँचल में अंजुरी का जौ डालते जाते। कुछ बच्चे हँस रहे थे और दो-एक सकपकाए-से उसकी इस लीला का उल्लुओं की तरह आँखें फाड़कर देख रहे थे।"[53] कहानी में लोकविश्वास के नाम पर टोना-टोटका और अंधश्रद्धा का भी वर्णन है। भाग्य जगाने के लिए रंगई बहू झाड़-फूँक के साथ बिल्ली की खेढ़िया हासिल करने का टोटका भी करती।

'पुन्नी माटी' नामक कहानी में दुर्गा पूजा के अवसर पर माँ दुर्गा की प्रतिमा के निर्माण में वेश्याओं के दरवाजे की मिट्टी को मिलाने की प्रथा है जिसे पुन्नी माटी कहा जाता है।

'हिमरेखा' कहानी के अंदर पहाड़ी अपने आप को पाण्डवों का वंशज मानते हैं और द्रौपदी के सिद्धांत पर चलते हैं। अर्थात इनके यहाँ की परंपरा है कि परिवार में चाहे कितने भी भाई हों विवाह सिर्फ बड़े भाई की होगी और बाकी भाई भी अपने बड़े भाई की पत्नी को ही

53. *संजीव, 'महामारी', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या –239*

पत्नी मान लेंगे। ऐसी मान्यता है कि ऐसा नहीं करने से देवता रुष्ट हो सकते हैं, बकरे की बलि देना पड़ सकता है, उनका यह लोकविश्वास अंधविश्वास ही है। **'प्रेत मुक्ति'** कहानी में यह लोकविश्वास है कि सुबह-सुबह वेश्या का मुँह देखने से मंगल ही मंगल है।

'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में थारू आदिवासियों की यह मान्यता है कि "हम थारू लोग गाय का दूध पीते नहीं बिट्टी? लेरू की आत्मा कल्पती है न! वह तो बाजी (बाहर से आए) लोगों का काम है।"[54] जबकि बिसराम की छोटी बच्ची भूख से रो रही होती है। बच्ची की मुँह में दूध की गर्म धार छोड़ने के लिए वह गोमाता से क्षमा-याचना करता है। थारूओं के अंदर यह अंधविश्वास भी व्याप्त है कि थारूओं को हरिना का मांस वर्जित है। अगर वे हरिना का मांस खाते हैं तो गाँव में हैजा फैलेगा। **'धार'** उपन्यास के अंदर मैना का पहला पति फोकल अपनी पत्नी मैना द्वारा दूसरा पति मंगर को रख लेने के कारण जीते जी अपनी पत्नी मैना का श्राद्ध करता है –"यहाँ भ्रष्ट होते ही आदमी का श्राद्ध कर देते हैं।"[55]

स्थानीय बोली

स्थानीय बोली में आंचलिक साहित्य के प्राण बसते हैं, जो जैसा है, उसे वैसा ही रच, गढ़ देना आंचलिक साहित्य की विशेषता है। आंचलिक शब्द, मुहावरे, लोकोक्ति, मिथक, बिंब, प्रतीक इत्यादि भाषा के आदान हैं जो कथा को अर्थवान और संप्रेषणीय बनाते हैं परंतु पात्रों एवं परिवेश के अनुकूल भाषा बोलने से कभी-कभी अलग-अलग क्षेत्रों के पाठकों के लिए अबूझ होने का खतरा भी बना रहता है। इसलिए संजीव कथा और भाषा के एकमेक होने के साथ उसकी अपनी कलात्मक क्षमता के साथ संप्रेषणीयता पर भी ध्यान देते हैं। पात्रों और पाठकों की बोलियों में संवाद-सेतू का निर्माण करना वे एक कठिन चुनौती मानते हैं। वे मूल भाषा का एहसास और बोध की पारदर्शिता बनाये रखने का अथक प्रयास करते हैं फिर भी

---

54. संजीव, 'जंगल जहाँ शुरू होता है', पहला संस्करण : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 25

55. संजीव, 'धार', पहला संस्करण : 2018, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 52

कहीं-कहीं वह पाठकों के लिए थोड़ी बहुत अबूझ बन ही जाती है। परंतु सत्य यह भी है कि स्थानीय बोलियों का प्रयोग कथा में हास्यव्यंगय के सृष्टि के साथ परिवेश को जीवंत कर देता है। **'आरोहण'** कहानी में जब रूपसिंह ग्यारह साल बाद अपने मित्र शेखर कपूर के साथ अपने गाँव माही के लिए देवकुंड के स्टाप पर उतरता है तो पहाड़ी और जंगली रास्तों के बारे में सोचकर वह चिंतित हो जाता है। वह एक चाय वाले से पूछता है –

"यहाँ कोई घोड़ा-वोड़ा नहीं मिलता क्या?"

"आप कने जाणा छावाँ। (आपको कहाँ जाना है।)"[56]

यहाँ दोनों रास्ते में एक नारी कंठ में पहाड़ी दर्द भरे गीत भी सुनते हैं जो परिवेश को सजीव कर देता है। पहाड़ का दृश्य पाठक की नजरों के सामने कौंध जाता है। 'धनुष टंकार' कहानी के अंदर सुरसती मालिक, मैनेजमेंट और युनियन के मिलीभगत का भांडा फोड़ती है –"साहेब, ठीकदार, युनियन के बड़का-बड़का सिंहजी, रायजी, मुखर्जी बाबू ...हमरा तो सब एके लगो हैं मुनीर भाई," सुरसती बताती है, "पिछलका दफा ठीकादार के मालूम पड़लइ कि ठीका ओकरा नई मिलतो, बस मुखर्जी बाबू के मिला के हमनियन के देलकई हुलकार। मार झाड़ू, मार झाड़ू हमनी लेलियइ लखेद बड़ा साहेब के।"[57]

'जसी-बहू' कहानी में अवधी बोली का प्रयोग देखने को मिलता है जब भी जसी बहू आंगन लीपती, अपने फटी एड़ियों को रगड़-रगड़ कर धोती, कचरे, लुगे-लते तालाब में धोती है तो फब्तियाँ कसी जाने लगती –"भतार आवात का? मूड़ धोये बाटू! नीमी का तेल न होय तो हमसे लेइ जाव!"[58]

---

56. *संजीव, 'आरोहण', संजीव की कथा यात्रा दूसरा पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 307*

57. *संजीव, 'धनुष टंकार', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 169*

58. *संजीव, 'जसी-बहू', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 121*

'सूत्रधार' उपन्यास तो भोजपुरी के नाट्य सम्राट भिखारी ठाकुर की जीवन गाथा ही है। स्व्यं अवधी भाषा के होने के बावजूद भी संजीव ने 'सूत्रधार' उपन्यास में जिस प्रकार भोजपुरी भाषा का प्रयोग किया है वह बेजोड़ है। उन्होंने भिखारी ठाकुर के माध्यम से भोजपुरी जगत को उनकी विरासत सौंप दी है –

"कलपतारन लइका जेकर मयभा महतरिया,

... ...

जाति के हजाम, जिला छपरा बलमुआ।"[59]

'सागर सीमान्त' की नायिका नसीबन बांग्ला में गीत गाती है तो **'रह गईं दिशाएँ इसी पार'** में देबू ठाकुर बांग्ला-हिंदी और अंग्रेजी के मिश्रिण शब्दों का प्रयोग करते हैं। 'धार' उपन्यास मे संथाली भाषा का प्रयोग है तो जंगल जहाँ शुरू होता है में आदिवासी और भोजपुरी भाषा का। **'खोज'** कहानी में बुंदेलखंडी बोली का प्रयोग देखने को मिलता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संजीव की कथा-भाषा परिवेश के अनुकूल है। उनके पात्र अपने-अपने धरातल में अपनी-अपनी बोली बोलते हैं। उनके कथा साहित्य में हिंदी, अंग्रेजी, बांग्ला, संथाली, भोजपुरी, अवधी, मगही, बुंदेलखंडी आदि बोली-भाषा के शब्दों का प्रयोग धड़ल्ले से देखने को मिलता है।

मेला

मेला भारतीय लोगों के मेल-मिलाप का केंद्र है। हमारी संस्कृति को प्रदर्शित करता यह हमारे जीवन में उत्साह और उमंग लाता है। साधारणतः यह मेला किसी उत्सव के समय किसी देव के दर्शन के लिए, किसी शुभ अवसर पर लगता है जहाँ काफी संख्या में लोग एकत्रित होते हैं, कुंभ का मेला सबसे बड़ा मेला है, जबकि श्रावण मास में देवघर में भी मेला लगता है।

---

59. संजीव, 'सूत्रधार', पहला संस्करण : 2004, पहली आवृत्ति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 143

इसके अतिरिक्त पशुओं के क्रय-विक्रय का सबसे बड़ा मेला सोनपुर में लगता है। आज इस तनाव भरी जिंदगी से थोड़ी राहत के लिए इस प्रकार के मेले का बहुत महत्व है। जहाँ लोग विभिन्न प्रकार के मनोरंजक कार्यक्रमों और हँसी-मजाक, उत्साह के माध्यम से कुछ हल्के महसूस करते हैं। संजीव के कथा साहित्य में इस प्रकार के मेले का खूब वर्णन हुआ है। **'सूत्रधार'** उपन्यास में संजीव ने बरहिनाबाद में लगने वाले मेला के बारे में बताया है– "बरहिनाबाद में सुरूठ बाबा का मेला लग रहा है – अगहन पंचमी को। पहले बैलघाटा, फिर साधु संत, फिर आम लोगों का मेला...।"[60] इसी मेले में पहली बार भिखारी ठाकुर अंगराहित यादव के नाच दल में शामिल हुए थे जहाँ से उन्होंने मलिक जी तक का सफर तय किया।

'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में रामनवमी के अवसर पर थरूहट का सबसे बड़ा मेला सहोदरा माई के दरबार में लगता है। चनपटिया, नेपाल, रामनगर तक से लोग अपने-अपने परिवार और गाँव-जवार के साथ विभिन्न सवारियों के माध्यम से या पैदल भी इस मेले में पहुँच रहे थे। जिनमें अधिकतर थारू और थारू स्त्रियाँ थीं। भीड़ के हिसाब से मंदिर और मेला का क्षेत्र छोटा था। तमाशे और दुकानें क्षेत्र के बाहर तक फैली हुई थीं। देवी के दरबार में पशुओं की बलि दी जा रही थी। कड़ाही चढ़ाई जा रही थी। मलारी बताती है कि मेले में तरह-तरह के तमाशे और नाच हैं –"छपरा, सीबान से लवंडे का नाच आया है, बनारस, जौनपुर से बाईजी और कानपुर से नौटंकी। मेले में सरकस भी हैं, किसिम-किसिम के खेल-तमाशे, कठपुतरी का नाच, पिघलनेवाली लड़की, नागकन्या-पूरा देह साँप का, सिर्फ मुँह लड़की का।"[61] इस मेले में कुछ थारू बालाएँ लोकगीत पर झमटा नृत्य करती हैं। मेले में सामान्य लोगों के साथ डाकू भी आते हैं। उपन्यास में दुसाधों के देवता बराह बाबा के पूजा के समय भी मेले-सा दृश्य है।

---

60. *संजीव, 'सूत्रधार', पहला संस्करण : 2004, पहली आवृत्ति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 58*

61. *संजीव, 'जंगल जहाँ शुरू होता है', पहला संस्करण : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 16*

'पाँव तले की दूब' उपन्यास में आदिवासी अंचल में लगने वाले छोटे हाट का चित्रण है। जहाँ शाक-सब्जी, केकड़े, मिट्टी के बरतन, मुर्गे-मुर्गियाँ, बकरे-बकरियाँ और भेड़ों की खरीद-बिक्री होती है। यहाँ बेचने वाली प्रायः आदिवसी स्त्रियाँ हैं और खरीदने वाले दीकू। युवतियों ने ब्लाउज पहन रखे थें जबकि प्रौढ़ायें सिर्फ मलिन साड़ियों में थीं। कथाकार लिखते हैं –"जगह-जगह मटके में भात की शराब और पकौड़े बिक रहे थे। मेले में आदिवासी लड़कियों की अलग भीड़ थी जो अपने ढंग से उटंग कसे हुए पहनावे, जूड़े में चाँदी की लड़ियों से और इससे भी ज्यादा अपने उन्मुक्त चुहुल से अलग से पहचानी जा सकती थीं। इनका आकर्षण मुख्यतः मोटे चावल, ज्वार, बाजरा, कोदों, नमक, सरसों और मिट्टी के तेल तथा पाउडर, चोटी, आलता, दर्पण, फीता, कंघा, नेलपॉलिश, गमछा, चोली, साड़ी और ब्लाउज की दुकानें थीं।"[62] इस प्रकार कह सकते हैं कि संजीव के कथा-साहित्य में मेले का चित्रण सजीव रूप में हुआ है।

निष्कर्ष : जो जैसा है, उसे वैसा दिखा देना, रच देना ही आंचलिक लेखन की प्रवृत्ति है। आंचलिक लेखन हिंदी साहित्य के लिए कोई नयी प्रवृत्ति नहीं है। इसका बीज भारतेंदु युग में पड़ा, जो प्रेमचंद युग में फला-फुला। इसे हम प्रकृतिवादी लेखन भी कह सकते हैं। आज आंचलिक लेखन ने पूरे विश्व को प्रभावित किया है। असामान्य सामाजिक स्थितियों अथवा सुदूर अपरिचित अंचलों अथवा जीवन संदर्भो को लेकर इस प्रकार के उपन्यास लिखे जाते हैं। संजीव ने अपने कथा साहित्य में इस आंचलिकता बोध को इस क्षेत्र विशेष की प्राकृतिक बनावट, भौगोलिक सीमाओं, खेत, नदी, पहाड़, मैदान, समाजार्थिक स्थितियों का अंकन, खानपान, रहन-सहन, रस्म-रिवाज, पर्व-त्योहार, लोकगीत, लोक संस्कृति स्थानीय बोलियों के माध्यम से चित्रित किया है।

---

62. संजीव, 'पाँव तले की दूब', प्रथम पॉकेट बुक्स संस्करण : 2005, पुनर्मुद्रण : 2009, 2013, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, पृष्ठ संख्या – 49

समाज में अघोषित मनसबदारों के इच्छा के मुताबिक आम जनता के जीवन में कोई विशेष बदलाव नहीं आया है। **'सूत्रधार'** उपन्यास में सामाजिक विषमता के कारण नचनियों, बजनियों और अछूतों की अलग पाँत, पशुओं के सार की बदबू देते कींचड़ के बगल में बैठाई जाती है। **'सर्कस'** उपन्यास में सर्कस मालिक उसमें काम करने वाले कलाकारों का आर्थिक, मानसिक एवं दैहिक शोषण करते हैं। **'जंगल जहाँ शुरू होता है'** उपन्यास में जातिप्रथा, आर्थिक विषमता एवं असमान भूमि वितरण प्रणाली ने थारू आदिवासियों का जीवन नर्क बनाकर उन्हें डाकू बनने के लिए बाध्य कर दिया है। इनकी कहानियों में स्त्री कहीं जसी-बहू, कहीं कल्याणी, कहीं आदिवासी हिंदिया तो कहीं दुलारीबाई के रूप में शोषित-पीड़ित हैं।

हमारे देश की बहुसंख्यक आबादी आर्थिक विपन्नता का शिकार है। **'मरोड़'** कहानी में मास्टर दीनानाथ अपनी बूढ़ी माँ, बीमार पत्नी और बच्चों के भरण-पोषण एवं दवा के लिए ट्यूशन पढ़ाने के लिए विवश हैं। **'पाँव तले की दूब'** उपन्यासिका में आदिवासियों के तन पर कपड़ों के नाम पर चिथड़े का कच्छा है। औरतें जैसे-तैसे बदन ढँकी हुई हैं। बच्चों की हालत कंगालों जैसी है।

मनुष्य आज धर्म के सच्चे अर्थों को भुलकर बाह्य आएँबर, पूजा-पाठ, अंधविश्वास, जादू-टोना, तंत्र-मंत्र, पाप-पुण्य आदि को ही धर्म मान बैठा है। **'पाँव तले की दूब'** उपन्यासिका में ओझा के कहने पर आदिवासी लोग एक महिला को डायन घोषित कर उसे पीट-पीट कर मार डालते हैं। **'महामारी'** कहानी में चेचक होने पर लोग पचरा गाते हैं और छोहरी चढ़ाते हैं।

संजीव ने अपने कथा साहित्य में प्रकृति, वातावरण और भौगोलिक स्थितियों का यथार्थवादी और मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। कथाकार झरिया की भौगोलिक स्थितियों, गलियों-उपगलियों, जमी-भीड़, कोक-प्लांट, कोयल के ढूहों से अंचल विशेष का परिचय कराते हुए यह संकेत दे देता है कि इन्हीं भौगोलिक स्थितियों के अनुरूप वहाँ के लोगों का जन-जीवन उपन्यास में चित्रित होगा। **'जंगल जहाँ शुरू होता है'** उपन्यास की भौगोलिक परिस्थितियाँ ही थारू आदिवासियों को डाकू बनने पर मजबूर कर देती है।

भारतीय संस्कृति अलग-अलग क्षेत्रों के रहन-सहन, जीवन शैली की विविधता को समेटे सबसे प्राचीनतम एवं श्रेष्ठ संस्कृति है। **'सागर सीमान्त'** कहानी में मछुआरों द्वारा जान जोखिम में डाल कर बीच समुद्र में मछली पकड़ना, उनकी पत्नियों का प्रोसेसिंग यूनिट में काम करना फिर भी फकीरी में जीना दर्शाया गया है। **'दुश्मन'** कहानी में शहरी बस्ती में रहने वाले गरीब लोग कोयला चोरी करके सूअर, मुर्गी, बत्तख पालकर अत्यंत सरल तरीके से रहते हैं। **'जंगल जहाँ शुरू होता है'** और **'धार'** उपन्यास में दुख, दरिद्र, बदहाली एवं अभाव के कारण आदिवासियों का रहन-सहन अत्यंत सीधा-सादा एवं सरल है।

संजीव के कथा साहित्य के अधिकांशतः पात्र मध्यवर्गीय एवं निम्नवर्गीय हैं। अतः इनका खानपान भी परिस्थितियों के अनुरूप अत्यंत साधारण है। **'आरोहण'** कहानी में पहाड़ी लोग नमक-मिर्च के साथ भुनी हुई मक्के की बाल खाते हैं तो **'सागर सीमान्त'** कहानी में मछुआरे मछली की मुड़ी का झोल, भात और मछली की चटनी खाते हैं। **'जंगल जहाँ शुरू होता है'** उपन्यास में काली कहता है कि साधारण व्यक्ति के लिए पेट भर भोजन प्राप्त होना ही स्वर्ग की प्राप्ति के समान है।

हमारे यहाँ विभिन्न संस्कृतियों के मेल-बंधन के कारण लोगों की वेश-भूषा में विभिन्नता है। यह विभिन्नता परंपरा, प्रकृति, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक विभिन्न कारणों से हो सकती है। **'सूत्रधार'** उपन्यास में नाई जाति के लोगों को तन ढँकने के वस्त्र के रूप में मुर्दे के कफन का प्रयोग करना पड़ता था। **'खिंचाव'** कहानी में नट-बाजीगरों की महिलाएँ कुर्ती, घाघरा तथा पुरुष पगड़ी बाँधकर करतब दिखाते हैं। **'आरोहण'** कहानी में घुड़सवारी वाला बच्चा पहाड़ी पतलून, सलेटी स्वेटर पहने हुए है।

हमारे यहाँ बच्चे के जन्म से लेकर उसके स्कूल जाने, शादी-ब्याह तक में विभिन्न तरह के रीति-रिवाजों का पालन किया जाता है। सतीप्रथा और विधवाओं का सर मुंडन जैसे कुछ कुसंस्कार भी थे जिनसे अब मुक्ति मिली है। **'सूत्रधार'** में भिखारी ठाकुर के स्कूल जाने के समय होने वाले खली छुआई रस्म का बड़ा ही मनोरम वर्णन है। **'जंगल जहाँ शुरू होता है'** में डाकुओं के बीच 'आत्मशुद्धि' के लिए 'लखराँव' का रिवाज है। **'हिमरेखा'** कहानी में

पहाड़ी अंचल जौनसार में बहु पति प्रथा का रिवाज है। संजीव के कथा साहित्य में जाति, धर्म, शिक्षा, रस्म, परंपरा, तलाक के नाम पर मनमाना निर्णय दे रही खाप पंचायतों का भी वर्णन है। **'हिमरेखा'** कहानी में इन्हीं खाप पंचायतों के अमानवीय और जबरदस्ती थोपे गए बहु पति प्रथा का नियम कथानायक के प्राण तक ले लेता है। **'लाज-लिहाज'** कहानी में एक लड़की को गैर-बिरादरी के लड़के से प्रेम करने और भागने के जुर्म में खाप पंचायत बहुत ही खौफनाक निर्णय लेती है। पाँचों पंच बारी-बारी से उस लड़की का बलात्कार इस तर्क पर करते हैं कि पाले-पोसे हमारी बिरादरी और भोग लगाए कोई और। **'जंगल जहाँ शुरू होता है'** उपन्यास में ये जाति पंचायतें यह निर्णय सुना देती है कि बड़ी जाति के पाड़े या उनके साले फेकन बहू जैसी नीच जाति की औरत के साथ बलात्कार कर ही नहीं सकते।

संजीव के कथा साहित्य में आभूषणप्रियता भी परिलक्षित होती है। 'सावधान! नीचे आग है' उपन्यास में कुछ राजस्थानी महिलाएँ हाथों में चाँदी का कड़ा और पाँवों में छड़ा पहने हुए हैं। **'पाँव तले की दूब'** उपन्यासिका में घर जाते समय आदिवासी युवतियाँ अपने बालों में चाँदी की लड़ियाँ लगाए हुए हैं।

अंचलों में चलायमान लोकगीत, लोकनृत्य, लोकभाषा, लोकसंगीत, लोकनाटक, त्योहार इत्यादि लोक संस्कृति को समृद्ध करते हैं। **'हिमरेखा'** कहानी में पहाड़ी लोग अपने को द्रौपदी का वंशज समझते हैं और एक द्रौपदी पाँच पति के नियम का पालन करते हैं। **'मानपत्र'** कहानी में एक मुस्लिम उस्ताद वागेश्वरी को किसी धर्म का नहीं अपितु फन का देवी मानकर पूजता है। यही सांस्कृतिक मेल-बंधन हमारी पहचान है।

लोक मानस के लोक कंठ से प्रवाहित लोक कथाओं में हमारी परंपरा, संस्कृति, आरंभिक जीवन शैली, रहन-सहन, रस्म-रिवाज बसते हैं। **'जीवन के पार'** कहानी में मानसिंह और बामई अपने बच्चों को सरहूल की कथा, फूलों के उत्सव सरना की कथा के साथ असूरों और 'हो' लोगों की लड़ाई का लोककथा विस्तार से सुनाते हैं। **'दुनिया की सबसे हसीन औरत'** कहानी के अंदर कथाकार ओराँव महिलाओं के चेहरे पर गुदे तीन गोदनों के पीछे की लोककथा सुनाते हैं।

लोकगीतों के माध्यम से लोक व्यवहार, लोक भावना एवं लोक जीवन की सामाजिक प्रस्तुति इनके कथा साहित्य में हुई है। जीवन की प्रत्येक अवस्था हर्ष-विषाद, आशा-निराशा, सुख-दुख, जीवन-मृत्यु की अभिव्यक्ति इन लोकगीतों में व्यक्त हुई है। **'आरोहण'** कहानी में पहाड़ी गीत, **'सागर सीमान्त'** में भटियाली गीत, **'सूत्रधार'** में विदेसिया के अतिरिक्त शादी-ब्याह, धार्मिक संस्कार, बारहमासा एवं कुसंस्कारों के खिलाफ चेतना के गीत भी हैं।

संजीव के कथा साहित्य में लोक विश्वास और लोक रूढ़ियों की झलक देखने को मिलती है। **'महामारी'** कहानी में ग्रामीण लोग चेचक को दैवीय प्रकोप मानकर मनौती मानने, छोहरी खिलाने और पचरा गाने में ही इसका निदान समझते हैं। **'पुन्नी माटी'** कहानी में दूर्गा पूजा के अवसर पर माँ दूर्गा की प्रतिमा के निर्माण में वेश्याओं के दरवाजे की मिट्टी को मिलाने का लोक-विश्वास है।

अतः अपनी जिज्ञासु वृत्ति के कारण उन्होंने अनदेखी, अनछुई भूमि को स्पर्श किया और उसे स्थानीय रंगों, रीति-रिवाजों, लोक-कथाओं, किंवदंतियों एवं मिट्टी की महक से सुशोभित कर उपन्यास के रूप में प्रस्तुत किया। आंचलिक उपन्यास निराशावाद का घोर विरोध करता है, विकास की दौड़ में पीछे छूटे अशिक्षित, अज्ञानी, शोषित लोगों की राह उद्दीप्त करता है। संजीव अपने साहित्य में आंचलिक जीवन की मूलभूत समस्याओं से जूझते हैं और उनमें चेतना जागृत करने का प्रयास करते हैं।